मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

श्री हेमचन्द्राचार्य

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

३२

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी

स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2005

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

३२

सम्पादकः
विजयशीलचन्द्रसूरि

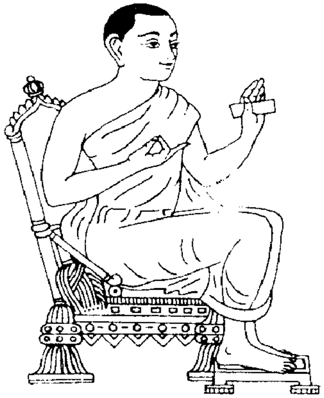

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२००५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धान ३२

आद्य सम्पादक: **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक: **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क: C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७

प्रकाशक: **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थान: (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

मुद्रक:

क्रिशना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

उदयरत्नजी कृत जोगमायानो सलोको	सं. डॉ. निरंजन राज्यगुरु	१
पाठक रुघपति-कृत सुगणबत्तीशी ॥	सं. सा. समयप्रज्ञाश्री	१८
श्रीपुण्यसागरसूरिकृत सूतक चोपाई	सं. मुनि कल्याणकीर्तिविजय	२३
महोपाध्याय-श्री समयसुन्दरगणिरचिताः मेघदूत-प्रथमपद्यस्याभिनव-त्रयोऽर्थाः (मेघदूत प्रथम पद्य के ३ अभिनव अर्थ)	सं. म. विनयसागर	२७
पं. मानसागरकृत मेघदूत-खण्डना ॥ अपूर्ण ॥	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	३२
टूंक नोंध : १. एक साध्वी-प्रतिमा	- शी.	८८
२. भुवनहिताचार्य	म. विनयसागर	८९
डॉ. भायाणीनुं मध्यकालीन साहित्य-अभ्यासक्षेत्रे प्रधान	हसु याज्ञिक	९१
माहिती : स्मृतिशेष विद्वज्जनो		१०१
स्वाध्यायः विशेषावश्यक भाष्यनो स्वाध्याय करतां सूझेल सुधारानी नोंध		१०२
विहंगावलोकन	उपा. भुवनचन्द्र	१०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयरत्नजी कृत जोगमायानो सलोको

सं. डो. निरंजन राज्यगुरु

पू. श्री आचार्यश्री विजयशीलचन्द्रसूरिजी महाराज साहेबना विहार दरम्यान वढवाण (जि. सुरेन्द्रनगर) खातेथी प्राप्त थयेल आ रचनानी झेरोक्स नकल परथी आ वाचना तैयार करी छे.

विक्रम संवत १७७० ना पोष सुदी सातमना रोज सर्जन थयुं अने वि.सं. १८७१ आसो सुदी ४ ना रोज लहिया मुनि गुणरत्नजी द्वारा जेनुं लेखन थयुं छे ते 'उदयरत्नजी कृत जोगमायानो सलोको'नी कुल पांच पानांनी हस्तप्रत बन्ने बाजु लखायेली छे. ११" x ६" नी साईझमां दरेक पेइज उपर १३ के १४ पंक्तिओ लखाई छे. नवमा छेल्ला पेज उपर पांच पंक्ति छे. आ रीते कुल ७८ कडीनी रचना १११ पंक्तिओमां लखायेली छे.

सर्जक कवि उदयरत्नजी:

पार्श्वनाथ प्रभुना गणधरनी परम्परामां रत्नप्रभसूरि थया, तेमना ३८ मी पाटे देवगुप्तसूरि थया. देवगुप्तसूरिना शिष्य कक्कसूरि मूळ उपकेशगच्छमांथी नीकळी तपागच्छमां भळेला अने राजविजयसूरि नाम स्वीकारेलुं. तेमना शिष्य रत्नविजयसूरि पछी शिष्योना नाम पाछळ 'रत्न' शब्द शरु थयो. आ रीते रत्नशाखामां थयेला कवि उदयरत्नजीना गुरुनुं नाम शिवरत्नसूरि हतुं.

कविश्री उदयरत्नजीए संवत १७७०मां बारेजामां शरु करेला अने खेडा गामे पूर्ण करेला 'श्री भावरत्नसूरि प्रमुख पांच पाट वर्णन गच्छ परम्परा रास'मां आ समग्र माहिती आपवामां आवी छे.

[जै.गू.क. भाग ९ पृ. .९५]

उदयरत्नजी खेडाना रहीश हता अने तेमनुं अवसान मियांगाममां थयुं एम कहेवाय छे. तेओश्रीने शृंगाररसभरित 'स्थूलिभद्र नवरसो' लखवाने कारणे आचार्ये संघबहार काढेला, पछी 'नववाड ब्रह्मचर्य'नी रचना करतां फरी प्रवेश मळ्यो एम नोंधायुं छे.

खेडाना रत्ना भावसार नामना कविए उदयरत्नजी पासे काव्यशास्त्रनो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास करेलो.

उदयरत्नजी द्वारा वि.सं. १७४९ थी शरु करीने वि.सं. १७८२ सुधीना समयगाळा दरम्यान त्रीशेक नानी मोटी रचनाओ अने छूटक स्तवन-सज्जायोनी रचना थई होवानुं नोंधायुं छे. श्री केशवलाल सवाईभाई द्वारा प्रकाशित 'सलोका संग्रह'मां 'श्री नेमिनाथनो सलोको', 'शालिभद्रनो सलोको', भरतबाहुबलिनो सलोको' जेवी केटलीक रचनाओ प्रकाशित थई छे परंतु अहीं अपायेल 'जोगमायानो सलोको' आज सुधीना कोई ज सन्दर्भग्रन्थोमां नोंधायेल जोवा मळ्यो नथी. कोई हस्तप्रतसूचिमां पण एनी यादी नथी मळती.

एक सुप्रसिद्ध जैन साधु-कवि शक्ति मातानी पुराणप्रसिद्ध कथानो सलोको रचे ए वात जराक विचित्र जणाय तेवी छे. लागे छे के कवि उदयरत्नने 'शक्ति' तत्त्व प्रत्ये गहन आस्था हशे, अने तेथी प्रेराईने तेमणे आ सलोकानी रचना करी हशे. एवी पण अटकळ करी शकाय के ते कविने संघ बहार मूकवानुं खरुं कारण तेमनी आवी 'अन्याश्रय' रूप गणी शकाय तेवी आस्था तथा ते आस्थाना प्रगटीकरण-रूप आवी रचना ज होय; शृंगारवर्णन ए बहानुं होय.

सलोकानो आछो परिचयः

सलोकानो प्रारम्भ कवि, परम्परानुसारी तीर्थंकर-वन्दन के गुरु-स्मरण वगेरे प्रकारना मंगलाचरणथी नथी करता, परंतु आ प्रकारनी प्रसिद्ध रचनाओनी आगवी पद्धति मुजब ओंकारना स्मरण पूर्वक करे छे.

अम्बा, जोगमाया, शक्ति, बहुचरा, पार्वती, दुर्गा-इत्यादि शक्तिवाचक नामोनो आमां अनेकवार प्रयोग जोवा मळे छे, अने शक्तिने जगतजननी के जगतनी सर्जनहार, रक्षणहार वगेरे रूपे ज कविए वर्णवी छे; जे बधुं एक जैन परम्पराना कविना मुखे वर्णवातुं होईने विशेष रसप्रद बनी रहे छे.

प्रसिद्ध कथा प्रमाणे, शुम्भ-निशुम्भ ए बे दानवोए, हरि, हर, ब्रह्मा, इन्द्र सहित तमाम देवोने हराव्या छे ने स्थानभ्रष्ट करी भगाड्या छे; त्यारे ते देवोए हिमालयमां अम्बामाता पासे आवीने अरज करी के आ दानवोथी तमे अमारी रक्षा करो. देवोनी प्रार्थना शक्तिमाता स्वीकारे छे, अने पछी मायावी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपसुन्दरीना रूप द्वारा शुम्भने लोभावी युद्धना मेदानमां घसडी लावी तेने तथा तेना समग्र सैन्यने नष्ट करी, देवोने पुनः स्वस्थाने प्रस्थापित करी आपे छे. प्रान्ते कवि कहे छे के महाकाली, महासरस्वती तथा महालक्ष्मी - आ त्रण तमारां स्वरूप छे, अने आ त्रणे रूपे तमे ज जगतनुं रक्षण करो छो.

देवी-दानव-युद्धवर्णनमां देवी द्वारा प्रयोजातां शस्त्रास्त्रो तथा तेनी विविध क्रियाओनुं वर्ण अत्यन्त जीवंत तेमज वीररस-छलकतुं छे. ६० मी कडीमां तो कवि देवीना हाथमां 'बंधुक' (gun) पण मूकी आपे छे अने गोळी पण छोडावे छे ! तो ६२मी कडीमां वलोणांनुं रूपक कविए आप्युं छेः खड्गरूपी मन्थान (रवैया) वडे शत्रुना दळने वलोवी शत्रुनी इज्जतरूपी माखण देवी ऊतारी ले छे- तेवा मतलबनुं ए रूपक खूब चमत्कृति सर्जनारुं बन्युं छे.

७१मी कडीमां वळी कवि शत्रुओना चित्तमां एवो प्रश्न उत्पन्न करे छे के 'अमे पुरुष शुं काम पेदा थया ? (आ करतां स्त्री थयां होत तो आ देवी-स्त्री जेवी शक्ति अमारामांय आवत !) आ कडीमां 'शत्रु चेंतें अमे पुरुष कां सरजा ?' ए पंक्तिमां 'चेंतें' पदनो अर्थ शुं थशे ? 'चिंते' एवो अर्थ ज तरत समजाय छे. बाकी जो ते क्रियापदने कच्छी बोलीना क्रियापद तरीके स्वीकारीए तो, शत्रु 'चेंतें' अर्थात् 'शत्रु कहेता हता (कहेवा लाग्या)' एवो अर्थ पण करी शकाय खरो.

आ सलोकानी बीजी प्रतिओ कोई ने कोई भण्डारमां होवी तो जोईए ज. जो ते मळी आवे तो पाठशुद्धि माटे खपमां जरूर आवी शके.

अहीं तळपदा शब्दोना प्रयोगो घणा छे, अने नोंधपात्र छे. 'भचरड्या' (६५), 'लापोट' 'थापोट' (६६) 'गणणाव्यां' (६८), 'चुपट' (६९), 'गरदी' (७०), 'तम्यो' (७७) वगेरे. आमां क्यांक क्यांक चारणी जबाननी छांट पण होवानुं कळी शकाय तेम छे.

देवीना रूपवर्णननी तथा दानव साथेना युद्धवर्णननी कडीओ साचेज रसदायक तथा अभ्यासयोग्य छे. शक्ति-वर्णननी अन्य छन्दरचनाओ साथे आनी सरखामणी करवी ए पण एक रसप्रद अभ्यास-विषय बनी रहे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोगमायानो सलोको

बावन अक्षरमां ॐकार बलीओ
किर्णे तेहनो भेद न कलीओ
सीद्ध साधक जेहनें साद्धे
वंदुं तेहनें जम मति वाद्धि ॥१॥

आदि हरीहर बंभ उपाया
जगत-जननी छें जे जोगमाया
सुंदर तेहनो कहुं सलोको
लीला अंबानि सांभळजो लोको ॥२॥

इच्छा पूरें ए अखील भ्रह्मांडि
रहि व्यापीने रूप अखंडे
जगमां सेवकनां संकट जांणी
मायारूपे जे धरें ब्रह्मांणी ॥३॥

आदि अनादि एह ज जांणो
सघलो संसार अेहथी रचांणो
आपे थापें ने आपें उथापें
करुणा करें तो बंधन कापे ॥४॥

करता हरता छें अेह कल्यांणि
सक्ती विना कोई सोभो नही प्रांणी
चारु-करमी ते अेहनें वलगा
अकरमी विना कोई नवी रहें अलगा ॥५॥

भवनुं मंडाण अछें भवानी
दीलनी चिंता चुरे देवानी
क्रोधें करीने नजर करडी
मधु कैटभ नांख्या छें मरडी ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखी देवने दुःख उपातो
मार्यो महीषासुर दाणव मातो
सुरथ वैसनें वरदांन दीधुं
राज्य वालु नें कारज कीधुं ॥७॥

हरी हर बंभ नें रवी ससी जोडि
सुरपति देवता तेत्रीस कोडि
शुंभ दैतें ते सघळा हराव्या
हार मांनीने हेंमाचल आव्या ॥८॥

अंबाजि आगल्य अरज करे छें
दीलमां देवता दुःख धरे छें
देवी दांणव-सुभट छें दुष्ट
अमनें कीधा तेंणें थांनक-भृष्ट ॥९॥

नीपनी छोंड्या सुरीनर नांग
जोरें रोक्या छें जगन नें जाग
त्रीभोवन कंटक म्लेच्छ ए ताजो
मनमां नांणें केहनो मलाजो ॥१०॥

वलती वेंमासी तव कहें इंम वेंमला
कहो आपणी तजीने कमला
भइं दांणवनें तुमें सुं भागा
इम नासीने आवी इहां लागा ॥११॥

तिहारें सुर कहें हाथ तमारें
अेहनुं लख्यु छें मरण आ वारें
वदी बत्रीसी वरदांन वारु
देवी रचें तीहा रूप दीदारु ॥१२॥

वरसां बारांक तेराकवाली
बाल कुंआरी सुदर सुखमांलि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुडी रुपाली अजब रंगीली
छलवा दैतनें थई छबीली ॥१३॥

पद पंकज पलव वराजें
लाल सुरंगां मांणेक लाजें
उपें हीरा-सी नखनी ओल
रुडी पांनी बहु कुंकुम रोल ॥१४॥

पिंडी ऊतरती एडी लंकाली
केळ-थंभ-सी जंघ सुहाली
कटनें लंकें केसरी हारीं
भुज नीतंब उनत भारें ॥१५॥

पातलपेटी नें नाभ्य गंभीर
युग्म पयोधर जांणें जंबीर
हार कमलनी हाथनें लटकें
मोहें मुंनीजन मुखडानें मटकें ॥१६॥

दंत दाडिमनी कलीनें जीपें
दीपसीखा सी नासीका दीपें
होठ परवाली रही छे हारी
मृगनयणी मोहनगारि ॥१७॥

भमर कबांन नयण सोभाला
खलक देखीने पांमें सहु ख्याला
वेंणें वासंग आवीने वसीओ
जांणें मुख सशी जोवानें रसीओ ॥१८॥

सीसफूलनें गोफणो नीको
दीपे जडाव डांमणीओ टीको
हीई सरबंध सिंथो समारो
ओपें आंखडीओ काजल सार्यो ॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कांने कुंडल रवी ससी जोती
मुंघ मुलांनी नाके छें मोती
सोवन रेखाओ रदनें
वारु विराजें तंबोल वदनें ॥२०॥

कंठे रेखा त्रण सोहि जम कंबु
तांणा कंचुकसुं थणहर तंबु
हिंई चोसरो नवसर हार
बाजुबंधनु तेज अपार ॥२१॥

जडीत चुंनडीओ झगमग झलके
कटिमेखला खल खल खलके
पाए नेपुर पायल वाजें
जांणे भाद्रवें जलधर गाजें ॥२२॥

ठम ठम अणवट विछुआ ठमकें
घम घम घुघरी गोफणो घमके
जडीत जालीमां जड्यां छे नंग
हाथें अंगूठी मिंदी सुरंग ॥२३॥

मिहेंकें चंदन मृगमद पुर
सोहें मुख-नुर उगतो सुर
चरणा चोलीनें चोसर फुले
उपे अंबाजी चीर अमुलें ॥२४॥

जाइ जोवन लेंहिरिं जम गंग
केसर-वरणुं छें कोमल अंग
गमन करंतां गिरमां जणाई
जाणे वादलमां वीजली थाई ॥२५॥

दांणव मल्या छें दातणनें काजें (में)
ततखेंण त्रीपुरा जाइ तेणें ठांमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेंण वाहीने राग आलापें
थेई थेई ता थेई शु पद तां थापे ॥२६॥

खांते खेलती घुंघट खोलिं
बोलिं मीठु जम कोयल बोले
रूप जोवानें रवीरथ थंभें
असुर देखीनइ पड्या अचंभें ॥२७॥

पूच्छि राखस पातलपेटी
किहां वसें तु केहनी छे बेटी
ठांम तमारो इहां न ठावो
किम आव्यां छो आघेरां आवो ॥२८॥

तिहारें त्रीपुरा कहिं ललकावी मोति
जिहां तीहां फरुं छुं वरने जोती
युद्धें करीने मुजने जे जीतें
तेह पुरषने परणुं प्रीतें ॥२९॥

बलीओ मुजने कोई झालि बांहि
नथी देखति त्रीभोवन मांहिं
भाखें भवांनी टेक धरीनें
जल थल जोउ छुं तेणें करीनें ॥३०॥

ईम सुंणीनें असुर पयंपें
जेह आगलि जग सहु कंपिं
शुंभ नांमे छें साहिब अमारो
तेह पुरसें मनोरथ तारो ॥३१॥

राखस वंशनो मोटो राजांन
सुरो नहि कोई जेह समांन
मांननी तुंमनें ते देसें सही मांन
नारी बीजीने तजी नीदांन ॥३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भद्रकाली तव कहें इणी भांतिं
खरी.... युद्धनी खांति
भडि मुझसुं जे रणमां भुपाल
मोदें तेहनें ठवुं वरमाल ॥३३॥

एहवो अंबाना मननो आकुत
दाणव शुंभने दाखें जई दुत
बिठी हिंमाचल उपर एक बालि
रमणी रंभथी अद्धीक रूपाली ॥३४॥

जुद्धें जीतें जे मुझनें जोरालो
वरुं ते वर मरद मुंछालो
कंन्या संग्रांम करसें ते केहवो
असुर मलीनें विमासे एहवो ॥३५॥

पापी शुंभे तव दुत पठायो
धुंम्रलोचन द्रवर (?) धायो
सीहणि आगलि जम सीयाल
तेंम ते हरसीद्धी हाथे लिहिं काल ॥३६॥

शुंभ तेहनी ते सांभली वात
चंड मूंड बें दैत वीख्यात
आपें तेहनें एम आदेश
कांमण्य ते लावो झालीनें केश ॥३७॥

दल लेइनें दुत ते धाया
हल हल करीनें हिमाचल आया
भारथ तेहसुं रचीनें भारी
वाघवाहनी नांखें वीदारी ॥३८॥

चुर्या चंड नें मुंड बें भूंडा
थयुं चीं(चं)डीनुं नांम चांमुंडा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोल वरत्यो ते राखसें जांण्यों
तइहारि अबलानो भय मन आंण्यो ।।३९।।

खरी मनमां वलि आंणीनें खीज
रोस धरीनें रगत बीज
रमणी लेवानें राखस-राजा
तरत मोकलें करी तगाजा ।।४०।।

जुधें अंबासुं जई ते जडीओ
जांणे छालीमां नाहर पडीओ
दैत्य दुर्गाइं आघो ते लीधो
पछें हालीइ घाउ ज कीधो ।।४१।।

पडें रगतना बिंदु जीहां जेता
थाइं राखसना रूप ज तेता
केता मारें ने केता संहारें
करें हरसीद्धी हुकम तेहारें ।।४२।।

लोहि लेईने घटघट पीई
वळी योगणीने वेंहचीनें दीई
क्रोधें तेहनुं मस्तक काप्युं
देवें बहुचरा नांम तीहां थापुं ।।४३।।

घणा संहार्या गीर्याई हाथें
संघला हुता जे तेहनें साथें
रगतबीजनी नीरसो जांणीनें
असुहीयामां अमरख आंणीनें ।।४४।।

वली बीजो तीहां नीसुंभ भाइ
सेना लेइनें पोहतो ते धाई
जोर तेहसुं मचाव्यो जंग
रणखेत्रनो वधार्यो रंग ।।४५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीध योगणीई ते पण्य संहार्यो
अंशमात्र न कोय उगार्यो
सुंभ सांभली तेह उदंत
आंणी रुदयामां रीस अत्यंत ॥४६॥

लाख गमे केई दांणव लुट्या
पहाड सरीखा जे जालम पोढा
बलिआ आभसुं भरें जे बाथ
सुभट अेहवा लेई राखसनाथ ॥४७॥

पान्य करीनें आयुध पूरें
चाल्यो रणवट वाजतें तुरें
जाणें उलटीओ जलनीधी पुर
मरद मूछाला म्लेच्छ माहाक्रुर ॥४८॥

खड्ग खेडा नें बगतर खलकें
झलहल झलहल बरछीओ झलकें
ढोल वाजे नें चमर ढलकें
कुर्म कडकडें शेष तां सलकें ॥४९॥

कंन्या वरवानें काजें उमाह्यो
अतुर थईनें मनसुं अलजायो
जांन लेइने शुंभ जोरालो
आव्यो हलकीने जीहां छें हिमालो ॥५०॥

छायो दिनयर खुरताल खेहें
जांणें कें घेर्यो आसाढें मेहें
नवल भेरी नें वाजें नीसांण
कड कड फरें तिहां बहुलां केकांण ॥५१॥

आव्यां दैतनां दल त्यां एम
कालि मेघनी काढ्यल जेम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रण-काहल वाजें रणसिंगा धीर
धिंगा सांभली तजे ज्यां धीर ॥५२॥

गरजें बोलें ते शुंभ गुमांनी
रखे छबीली रहि हवि छांनी
वनीता वहली था लागें छें वार
खडा झुझवा कोडि खंधार ॥५३॥

झबक लेइने तरुंआरि कालें
चतुरा चाहीने आघेरी चालें
जगमां कुण करें अमारी होड्य
करी युध नें पुरु कोड ॥५४॥

मुझ आगल तुं कुंण मात्र
गोरी तारो छें कोमल गात्र
बलें जोरें पणि तुझने हुं बाला
आखरे परणीस तजो तिणें चाला ॥५५॥

शुंभ सांभलजे साचुं हुं बोलुं
खांति ताहरी तो घुंघट खोलुं
ताती तरुआरि देखीश तारी
तारी प्रतीज्ञा पूरासें माहरी ॥५६॥

इंम कहीनें ईस्वरि आपें
सावज पूठें पल्हांण थापें
दंत पीसीनें दैतनें दलवा
हुंस करीनें रणखेत्र हलवा ॥५७॥

हाथे वीसे तीहां हथीयार झाली
चाचरें झुझवा सांमी ते चाली
म्लेच्छां मारण माहा मछराली
काली कंकाली थई कराली ॥५८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रणके रणतुर सिंधुई रागें
वेगें वछुटी लीधी तीहां वागें
दंत काढिनें दैत्यनें दुदाला
चढें रणमांहि केई वडाला ॥५९॥

हुउ कोलाहल कंकाल हुक
बहुलं धंघोली छुटे बंधुक
छय लच्छ छे हां दाणव छुटा
जाणे धनुपर्थी तीर वछुटा ॥६०॥

दैत्य चंडीनें विंटी चोफेरें
जाणें सुकरें सीहण घेरी
वीसे भुजासुं वढें वाराही
मारें म्लेच्छनें मनसुं उंमाहि ॥६१॥

खड्ग घुंमावी मथांण घाट
दल वलोई कर्यो दहवट
इज्जत-मांखण लीउं ऊतारी
दुसमनका जम तीहां डारी ॥६२॥

मार्यो सुंभ नें उतार्यो मद
राखस रुद्राणीइं कर्या सहु रद
गूसी गदाइं गुरजें केई गुंद्या
छुटी जमधारें केताइक चुर्या ॥६३॥

केई पडतालें घाली पायालें
केई आकासें लीधा उलाली
केई पछाडि प्रथीइं पाड्या
केई त्रीशुलें तीर सुं ताड्या ॥६४॥

घणा तो मार्या मूशल्घाइं
पाळी केताएक रगदोल्या पाअें

अंगें अड्या ते भचरड्या उरें
मुह मरड्या केइ माहामुंरे ॥६५॥

कुंहणी गदा कें पाटु लापोट
ठांमे राख्या केई मारी थापोट
हाथे पगे ने मस्तक हीई
आपें छेंदीनें उडाडी दीइं ॥६६॥

चक्रें चुर्या केई चुसीनें लीधा
पडता लोहीइ उपाडी पीधा
हजारगमे केई कीधा हजंम
लाखगमें तो राल्या उजम ॥६७॥

चरणे झाली ते नाख्या केइ चोली
केइ गणणाव्या गोफण गोली
ढाल वडें केइ धरणीइं ढाला
गर्व घणाना गेडीइ गाल्या ॥६८॥

वेंरी घणा तो वाघें वलुर्या
चापजोरें केई रणमांहि चुर्या
कुबधि केतांइक कुहाडे कुट्या
चुपट सांडसे घणा तो चुंट्या ॥६९॥

केई हुता जे जूधना कुसली
मुदगरें मारी लीधां ते मसली
मोह पमाडि नांख्या केइ मरदी
गगने उडाडी तेहनी गरदी ॥७०॥

संखनादें केई लीधा तीहां सोसी
खेरु कर्या केइ बरछीइं पोसी
तोमर हले केइ घुघरें तरजा
शत्रु चेंतें अमे पुरष कां सरजा ? ॥७१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विटलसंलाते मेहला वीगोई
जावा न दीधो जीवता कोई
पापी पाढा इम अंबानो परतो
जगमां संघलो तव जयकार वरत्यो ॥७२॥

ब्रमा आदि सहु देवता भावें
स्तवे अंबानें तिणें प्रस्तावें
आसा पुरें तुं संकट चूरें
दुरीत दुसमननें टालें तुं दुरे ॥७३॥

त्रीभोवन रह्यो छें ताहरें आधारें
तुठी तारें तुं रुठि संघारिं
जीहा जीहा पार्वती तुं पद धारें
तिहारे सेवकनां काज सुधारें ॥७४॥

गढ मद(ढ)ने वावि तरु गीरवर गुफाइं
वासें वसें तु वली जल ठाइं
वीश्वजननी तुं वीश्वमां व्यापी
आगम ताहरो कोइ न सके उप(पा)सी ॥७५॥

आसो माघ नें चैत्र आसाढें
अरचें तुझने जे उत्तम दाडें
नवरात्र नें नव नव दाडा
जालिम ते नर लहें सुख जो(जा)डा ॥७६॥

माहाकाली माहासरसती माता
माहालखमी तुं जगमां वीख्याता
त्रीधा रूपें तुं संसार तारें
तम्यो वरदाता विघन नीवारें ॥७७॥

संवत सतर सीतेरा वरषें
पोस मास सुदि आतम हरखें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोपें सलोको एह जोडायो
उदयरत्न कहे पुण्योदय मे पायो ॥७८॥

सं. १८७१ ना आसो सुदी ४ लखितं मुनि गुणरत्नेन ॥

★

शब्दकोश

कडी		
१०	जाग	याग
१३	बारांक तेराक	बार-तेर
	सुखमांलि	सुकोमळ
१४	उपें	ओपे-शोभे
	ओल	पंक्ति
१८	कबांन	कमान
	वेंणें, वासंग	वेणी (चोटलो), वासुकी
(नाग)		
२०	मुंघ मुलांनी	मोंघा मूलनी
	रदनें	दांत पर
२१	तांणा	(तंबू) तांण्या
२५	लेंहिरिं	लहेरो
२६	वेंण वाहीने	वीणा वगाडीने
३३	भडि	सुभट
३४	आकुत	आकूत-अभिप्राय
३७	कांमण्य	कामिनी
३८	भारथ	महाभारत/युद्ध
३९	तईहारि	त्यारे
४१	छालीमां	छालियामां(?)
	नाहर	जंतु विशेष (?)
४४	गीर्याइ	गिरिजाए
	अमरख	अमर्ष-रोष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८	पान्य	पान(रक्तपान ?)
४९	बगतर	बख्तर
	कुर्म	कच्छप (कच्छपावतार)
	सेष	शेषनाग
५१	खेहें	खेह–धूळ(उडती)
५२	काढ्यल	(?)
५४	तरु आरि	तरवार
६०	छय लच्छ	छ लक्ष
६१	सुकरें	सूवरें
६९	चुपट	चपटी (साणसानी)
७१	तरजा	तर्जना करी
७२	विटलसं लाते	(?)
७७	तम्यो	तमे

C/o. आनंद आश्रम
घोघावदर (दासी जीवण)
ता. गोंडल (राजकोट)

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठक रुघपति-कृत सुगणबत्तीशी ॥

सं. सा. समयप्रज्ञाश्री

'सुगणबत्तीसी' नामनी मारवाडी भाषानी आ रचना, खरी रीते वैराग्यप्रेरक रचना छे. बूढापो एटले के वृद्धावस्था केटली वसमी होय छे, अने ते अवस्थामां माणसे केवी तो लाचारी तथा पराधीनता वेठवी पडे छे, तेनुं हृदयवेधक बयान आ बत्तीसीमां थयुं छे. कोई एक वृद्ध मनुष्य पोतानी लाचारीनुं स्वमुखे वर्णन करतो जाय अने श्रोताओ दिग्मूढ बनीने ते सांभळता होय, तेवुं वातावरण आ वर्णन थकी नीपजाववामां कर्ताने धारी सफलता सांपडी शकी छे. आपणे थोडी वानगी चाखीए:

'हुं जाणतो हतो के मने लाखेणो हीरो जड्यो छे, पण ए तो साव खोटो नीकळ्यो ! में 'आ मारी ज छे' एम मानीने सरस युवती साथे लग्न कर्या, तेणे घर पर कबजो लई लीधो-घरवाळी बनीने; अने पछी (मारा) धन पर मालिकी-हक जामतां ज मारा तरफथी मों फेरवी लीधुं !' (क. २-३). पहेलां तो ए मने जमाड्या विना जमती पण नहीं एवी पतिपरायण हती, पण (बधो हक हाथमां आवतां) हवे ते बधुं वीसरी बेठी छे ! (क. ४). हवे मारे माटे बे टंके मकाईनी खाटी घाटडी ज होय छे; मेवा मीठाई तो तेना पुत्र-पौत्रो माटे ज होय (क.५ छोकरा तो मारा ज; में ज मोटा कर्या; ने हवे पोतानो धन-भाग ःईने छूटा थई गया छे; वहुओ पण मूळे खानदान हती, पण धन हाथमां आवतां ज पोताना पति (मारा पुत्रो) ने लई जुदी जती रही छे; मारा माटे ए दिशा बंध ! (क.६-७)

पहेलां तो ५-७ गाऊनो पंथ रमतमां चाली नाखतो; ने हवे तो घरना आंगणा सुधी चालवानुं य अशक्य दीसे छे ! (क. १०). जीभ, नाक, कान, आंख बधी इन्द्रियोनी शक्ति ओसरी चुकी छे (क. ११-१४). घरना दरवाजे बेठो रहुं छुं. मारी सत्ता बधी गुमावी बेठो छुं. हवे 'तमे शुं जमशो ? शुं पहेरशो ?' एटलुं पण कोई पूछतुं नथी मने ! (क. १५). वाते वाते मारो साथ शोधनारां स्वजनोने आजे तो मारी सामे जोतां ज सूग थाय छे ! (क. १६). संसारनी आ स्वार्थी रीत हुं न समज्यो लोभने लीधे, अने में जिनवाणी न ज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांभळी ! (क. १७). हवे तो गोळमां पडेली माखी जेवो के पाणीमां डूबाडेल कंबल जेवो मारो घाट थयो छे ! हुं नीकळी शकुं नहिज. (क. १९-२०). 'नाजनुं धन नाजमां, व्याजनुं व्याजमां अने राजनुं राजमां' एवुं ऊखाणुं तो सांभळेलुं, पण लोभनो मार्यो हुं तेने अवगणतो ज रह्यो ! (क. २३).

आम वैराग्यबोधक उपदेश छेक सुधी वर्णवायो छे, जे जीवनना वास्तवनुं भान करावी जाय छे. ३२मी कडीमां 'सुगण-सुगुण जनने' समजाववा माटे आ बत्रीशी रची होवानुं रचयिता रुघपति पाठक जणावे छे. 'पाठक रघुपति' ए मूळ नाम छे. ते स्थानकवासी अथवा तेरापंथी परम्पराना होय तेम अनुमान थाय छे. लेखन वर्ष सं. १८८६ छे, एटले ते पूर्वेनी आ रचना छे.

मने जडेल एक पानांनी आ प्रत उपरथी आवड्युं तेवुं सम्पादन करीने मोकल्युं छे. भूलचुक होय तो ध्यान दोरवा विद्वान् पुरुषोने प्रार्थना करुं छुं.

सुगणबत्तीसी ॥

सुगण बूढापो आवियौ, लखीयो नही भाई ।
रात दिवस दंधै रह्यो, केई कीध कमाई ॥१॥ सु.
माहरी कर कर मांनतौ, मद धरतौ मोटो ।
जांण्यो थी हीरो लाखरो, नींकलियौ खोटो ॥२॥ सु०
तरुणी परणी हाथरी, घरणी घर हेर्यो ।
धन ऊपर मन धारियौ, मोसुं मन फेर्यो ॥३॥ सु०
जीम्यां विण नही जीमती, पति-भगति नारी ।
जी-जी करती जीमती, विधि तेह विसारी ॥४॥ सु०
स्युं पालै बेटा पोतरा, मनगमतै मेवै ।
मोनै खाटी घाठडी, दोय टंकै देवै ॥५॥ सु०
मोटा बेटा माहरा, मोसुं हूआ मोटा ।
ले ले धन लोंठापणै, सहु हूआ जूवा ॥६॥ सु०
कुलवंती बेटाबहू धन दे दे आंणी ।
ले बेटा अलगी रही, कीधी दिस कांणी ॥७॥ सु०
छोटो मो भेलो रह्यो, तेहनी पिण नारी ।
बोलै ओछा बोलडा, अजे नाई बारी ॥८॥ सु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागी वय बालक तणी, फिर पाछी आई ।
कहितां लागै कारिमौ, लकडी पकडाई ॥९॥ सु०
पांच सात कोसां तणो, कदे पंथ न गणीयो ।
आज समो घरि अंगणो, मोसुं जाय न मिणीयो ॥१०॥ सु०
गाहा दूहा गीतडा, पढतो अणपारै ।
हिवणां ते मुझ जीभडी, अष्यर न उचारै ॥११॥ सु०
सुरंभ तेल चंपेलरी, करि देतो परिष्या ।
हिवणां लेखै माहरइ, सहि लागै सरिखा ॥१२॥ सु०
नयणे हुं नग परखतो, निरखी घरनारी ।
दूरी ठीक न का पडै, मिटी ज्योति करारी ॥१३॥ सु०
राग रंग सुणतां समो, सुरसुं कहि देतो ।
कान लग्यो वातां करै, तौही होय न चेतो ॥१४॥ सु०
बारोडी बैठो रहुं, खिलवत सहु खोई ।
स्युं खास्यों स्यों ओढस्यों, युं न कहै कोई ॥१५॥ सु०
सेंण संबंधी आपणा, पल पलमैं मिलता ।
सूगालो हिव देखनै, ते जायै टलता ॥१६॥ सु०
स्वारथी यै संसाररी, मैं पैठ न जांणी ।
लोभ तणैं वस लागनैं, न सुणी जिनवांणी ॥१७॥ सु०
गति सारै मति ऊपजै, रागादिक रोधी ।
कोइक पछतावो करै, बुधवंत सुबोधी ॥१८॥ सु०
सुघडपणै सुलझ्यो नही, भ्रम भूलो भाई ।
गुलमें माखी गड रही, नीकलन न पाई ॥१९॥ सु०
मौडी खबर पडी मुनें, कांई हिव कीजै ।
कांबल अतिभारण हुई, ज्युं ज्युं जलभीजै ॥२०॥ सु०
पोसै पडकमणै समै, न सक्यो परवारी ।
घर घर हुं रुलतो फिर्यो, क्रम बांध्या भारी ॥२१॥ सु०
नाज तणौ धन नाजमै, व्याजै व्याज अडायो ।
राज कमायो राजमै, नीसरण न पायो ॥२२॥ सु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए ओखाणो आगलौ, श्रवणे थौ सुणीयो ।
पिण तीने लालच लग्यां, गिणती नही गिणीयो ॥२३॥ सु०
कीधौ लोकारै कीयै, में पाप कमायो ।
आडो म्हांरे आवसी, चेतौ चितमांहे ॥२४॥ सु०
पायो थौ माणसपणौ, निकमां नीगमीयौ ।
जांणे काग उडावतां, चिंतामण गमीयौ ॥२५॥ सु०
ममता लागै में कियौ, हुं कहितौ माहरो ।
सो तो दीसै पारकौ, में पाप वधार्यो ॥२६॥ सु०
पाप कमायो पापरं, लेखै सहु लागै ।
दरमाटी लागी दरै, स्युं सुणतौ आगइ ॥२७॥ सु०
ध्रम लेखै खरच्यो नही, में पइसौ हाथे ।
हिवणां सहु परवस थयो, स्युं चलसी साथे ॥२८॥ सु०
धरम सखाई जीवरो, ते में हिव जांण्यो ।
पिण जांण्यां कासूं हिवै, पहिली न पिछांण्यो ॥२९॥ सु०
एक घडी आधी घडी, जिनवरने जापै ।
सरदहणा सुध राखतां, भवभ्रमणसु भाजै ॥३०॥ सु०
इण भवमें अनुमोदनां, करतां निसतारो ।
ए श्रीजिनवर वचन छै, सिद्धांत संभारो ॥३१॥ सु०
सुगुणांनै समझावणी, बत्तीसी एह ।
पाठक श्रीरुघपति कहै, सुणज्यो ससनेह ॥३२॥ सु०

इति श्रीसुगणबत्तीसी संपूर्णं ॥ सं. १८८६ फा. व. ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगणबत्तीसी-शब्दकोश

कडी क्र.	चरण क्र.	शब्द	अर्थ
१	३	दंधै	धंधामां
२	३	थी-'	स्त्री-पत्नी
३	२	हेर्यो	हाथ कर्युं-कबजे कर्युं
५	३	घाठडी	मक्काई-छाशनी वानगी
८	१	मो भेलो	मारी भेगो
१०	४	मिणीयो	मपावुं (आंगणा सुधी जवुं अशक्य)
११	२	अणपारै	अपार/घणां
१२	१	सुरंभ	सुरभि-सुगंध
१४	२	सुरसुं	सूर सहित के सूर उपरथी
२१	४	क्रम	कर्म
३०	३	सरदहणा	सद्दहणा-श्रद्धा
३१	२	निसतारों	निस्तार करो / तरी जाव
१५	१	बारोडी	बारी पासे/ बारणे
१७	२	पैठ	रीत (?)
२२	१	नाज	(?)
२३	१	ओखाणो	ऊखाणुं
२५	२	निकमां	नकामुं / व्यर्थ
२७	३	दरमाटी	दरनी माटी

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपुण्यसागरसूरिकृत

सूतक चोपाई

सं. मुनि कल्याणकीर्तिविजय

सूतक एटले जन्म तेमज मृत्युना अवसरे पाळवामां आवतो एक रिवाज. आ रिवाज भारतवर्षमां हजारो वर्षोथी परम्परागत प्रचलित/स्वीकृत छे. जेना घरमां पुत्रादिनी प्रसूति थई होय अथवा मृत्युनी घटना घटी होय, तेनाथी देवपूजा/जिनपूजा न थाय, तथा तेना घरनो आहार मुनिओथी न लेवाय - आवी शास्त्रमान्य परम्परा छे; अने तेना नियमो केवा केवा होय छे तथा ते नियमो अंगेनो निर्देश कया शास्त्रग्रन्थमां सांपडे छे, तेनुं वर्णन आ चौपाईमां थयुं छे.

केटलाक लोको सूतकमां मानता नथी. तो पश्चिमी संस्कारना प्रभावमां आवेलो वर्ग वळी आ बधी बाबतोने अन्धश्रद्धा-वहेम वगेरे-रूपे विचारे छे. ते बन्ने प्रकारना लोकोने माटे शास्त्रानुसारी आ चौपाई घणी मार्गदर्शक बनी शके.

रजस्वला स्त्रीओ अंगेनी जे शास्त्रीय मान्यता तथा परम्परा छे, तेनुं पण आमां निरूपण थयुं छे. आजे आ बाबतनी मर्यादा ज्यारे नामशेष थवा जई रही छे, त्यारे ते मर्यादा केटलीबधी शास्त्रोक्त तथा अनिवार्य छे ते समजवामां आवी रचना घणी उपकारक थाय तेम छे.

अंचलगच्छीय आ. पुण्यसागरसूरिए सं. १९०६ मां जखौ (कच्छ) बन्दरना पोताना चातुर्मास दरम्यान आ चौपाई रची होवानो उल्लेख कडी-३०-३२ मां छे.

अचलगच्छ ज्ञानभण्डार-मांडवी-कच्छमांथी प्राप्त थयेल बे प्रतिओने आधारे आ सम्पादन करवामां आव्युं छे. ते ज्ञानभण्डारना कार्यवाहकोनो ऋणस्वीकार करुं छुं.

सूतक चोपाई

।। अथ सुतकनी चोपई लख्यते ।।

श्रीसरसती देवी समरू माय, सहगुरुनें बलि लागुं पाय ।
विचारसार ग्रंथथी हुं कहुं, ते परमारथ जांणों सहु ।।१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुतक तणो हुं कहुं विचार, सांभलजो नर-नारी सार ।
जेहनें घरें जन्म थाइं ते जाण, दश दिवसनो कह्यो परीमांण ॥२॥
एतलो पुत्रजन्मनों सार, पुत्री जन्में दिवस ईग्यार ।
मृत्यु घरनों सुतक दिन बार, ते घरें साधु न वोहरें आहार ॥३॥
ते घरनो जल अग्नी जांण, जिनपुजा नवी सुझे सुजांण ।
इंम **निशीथचुर्णी** माहें कह्यौ, एह तत्वारथ गुरुमुखथी लह्यौ ॥४॥
निशीथ सोलमें उदेसें सार, ए महंत मुंनी कहें अणगार ।
जन्म तथा मरण-घर जांणों सहु, दुगंछनीक गुरुमुखथी लहुं ॥५॥
इंम [1]**व्यवाहर(व्यवहार)भाष्य**मां वली, इंम भांषे सुधा साधु केवली ।
मलयगिरी कृत टीका जांण, दस दिवस जन्म सूतक प्रमांण ॥६॥
हवे सांभलजों जिनवांणी सार, इंम भांषे सुधा अणगार ।
विचारसार प्रकर्णे सार, इंम भांषे श्री जिन-गणधार ॥७॥
मास एक स्त्रीनें सार, प्रतिमा दर्शन न करें विचार ।
दिवस च्यालीस जिनपुजा सार, न करे स्त्री ए व्यवहार ॥८॥
साधु पिण नवी लिइं आहार, तिहां सुतक कहे अणगार ।
तेहनां घरनां मांणस होय, जन्म-मरणनो सुतक जोय ॥९॥
न करे पुजा दिन बार ते जांण, समझी करजों चतुर सुजांण ।
मृत्युने अडकणहारा कह्या, चोवीस पोहर तें साचा कह्या ॥१०॥
वली पडिकमणांदिक न करे जांण, इंम भांषे छें त्रिभूवन भांण ।
वे[2]शनां पलटणहारा कह्या, आठ पोहर तें साचा सदह्या ॥११॥
कांध देणहारा मृत्युनें जांण, वली अन्य ग्रंथमें जांणों सुजांण ।
सोल पोहर पडीकमणों नवी कह्यो, ए जिन भांख्यो आगमथी लह्यो ॥१२॥
जन्मनों सूतक दस दिन सार, जन्मने थानक मास विचार ।
घरनां गोत्रीनें दिन पांच, सुतक टालें गुरु भांषें साच ॥१३॥
जन्म हुओ ते ज दिनें जो मरे, वली देशांतर फरतों मरें ।
संन्याशी अनेरो मृत्युक होय, तो दिन एक सुतक जांणों सोय ॥१४॥

---

१. विवहार अ. ॥
२. मृतकनां वस्त्रो बदलावनारा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दास दासी घरमें मृत्युक होय, दिन [2]एक-बे-त्रणनों सुतक जोय ।
आठ वरसथी निचो मरें सिशु, तो दिन आठनो सुतक इस्युं ॥१५॥
[3]इंम जन्म-मरणनो सुतक कह्यो, अन्य ग्रंथमां इंम ज कह्यो ।
वली **विचारसार** मांहें सार, इंम भांपे छें श्रीअणगार ॥१६॥
ऋतुवंती नारी तणो विचार, त्रिण दिन लगैं भांडादिक सार ।
नवि छबें कुलवंती नार, पडिकमणांदिक दिन च्यार निवार ॥१७॥
तपस्या करतां लेखे सही, दिन पांच पछे जिनपुजा करी ।
वली स्त्रीनें रोगादिक होय, दिन त्रण ओलंघ्या सोय ॥१८॥
दिठा मांहे रुधिर आवे सही, तो तेहनों दोस म जांणों सही ।
विवेके करी पवित्र थाइं नार, पछे जिनदर्शनथी लहे भव पार ॥१९॥
इंम जिनप्रतिमा पूजा करो, जिम भवसायर लीलाइं तरो ।
वली साधुसुपात्रें दीजें दांन, जिम पांमो तमें अमरविमांन ॥२०॥
जिनपडिमानी अंगपूजा सार, न करे ऋतुवंती ते नार ।
इंम **चर्चरीग्रंथ** मांहें विचार, ए परमारथ जांणों सार ॥२१॥
वली भांष्यों छे सुतक विचार, [4]भांष्युं सहगुरुनें आधार ।
तिर्यंचतणों लवलेस ज कहुं, ते आगमथी जांणों सहु ॥२२॥
घोडा उंट[5] भेस घरमां होय, प्रसवे दिन एक सुतक जोय ।
गाय प्रमुखनों मरण जव थाय, कलेवर घरथी बाहिर जाय ॥२३॥
एतली वेला सुतक होय, वली दास [6]दासीकन्या घरमां होय ।
जन्म होयनें मृत्युं जांण, त्रन रात्रनों होय प्रमांण ॥२४॥
जेतला मासनो गर्भ ज पडे, तेतला दिवसनो सुतक नडे ।
भेंस वीहाया दिन पंनर दुध, ते मांहे तो कहीइं असुध ॥२५॥
गौ दुधनों कह्यौ [7]प्रमांण, दिवस दस तें जांणों गुणजांण ।
छाली दिन आठ [8]पछें ते दुध, ते मांहे दुध तें कहीइ असुध ॥२६॥

---

२. एक-बेनो त्रणननों ब. ॥
३. जन्म-मरणनो सुतक इंमज कह्यो ब. ॥
४. भाषुं सहगुरु तणे आधार अ. ॥
५. उठ ब. ॥
६. दाशी घरमां कन्या ब. ॥
७. परिमांण अ. ॥
८. पछी अ. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौमुत्रमांहे चोवीस पोहर, समुछिम जीव उपजें ते जोर ।
सोल पोहरनी भेसनी नीती मांहें, समुछिम जीव उपजें ते मांहे ॥२७॥
द्वादश पोहर बकरी नीति मांहें, आठ पोहर गाडरनीती ज्यांहें
एहमां समुछिम उपजे सही, एह बात गुरुमुखथी लही ॥२८॥
ए सुतकनो कह्यो विचार, थोडामांहें भांष्यो सार ।
सुतकविचार आगममांहे कह्यौ, जिनेश्वरमुखथी सुधो लह्यौ ॥२९॥
सोहमसुद्धपरंपरा जांण, तेजे करी दिपें जिम दिनभांण ।
श्रीअचलगछें वांदु अणगार, **श्रीपुंण्यसिंधुसूरीश्वर** सार ॥३०॥
भणे सांभलें जे नरनार, चाले ते तो शुद्धाचार ।
अनुक्रमें अमरविमांने सोहाय, रयण आभुषण धरी मुक्तें जाय ॥३१॥
संवत ओगणीश छीलोतरा (१९०६) सार, श्रावणकृष्ण पंचमी कही हितकार ।
श्रीजखौबिंदर चोमासुं करी, चोपई सुतकनी कही थिर करी ॥३२॥
श्रावक श्राविका पालस्ये जेह, श्रीजिन आणांइं चाले तेह ।
सर्वारथसिद्धतणां सुख सार, वली मुक्तितणां सुख लहेस्यें निर्धार ॥३३॥

॥ [१]इति श्रीसुतकनी चोपई संपुर्ण ॥

कठिन शब्दो

कडी क्र.	शब्द	अर्थ
५	दुगंछनीक	जुगप्सनीय-जुगुप्साजनक
६	सुधा	शुद्ध
११,१२	पडिकमण	प्रतिक्रमण- जैन धर्मनी आवश्यक क्रिया
१४	मृत्युक	मृतक/मरनार
२५	वीहाया	वींयाय, प्रसूति करें
२६	छाली	बोकडी / घेटी
२७	समुर्छिम	स्वयमेव उद्भवतां जन्तुओ
२७	नीती	मूत्र / लघुनीति

★

१. इति श्रीसुतक छंद संपूर्णम् ॥ संवत् १९०६ श्रावण वद ५ तिथौ ॥ अ. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महोपाध्याय-श्री समयसुन्दरगणिरचिताः

मेघदूत-प्रथमपद्यस्याभिनव-त्रयोऽर्थाः

(मेघदूत प्रथम पद्य के ३ अभिनव अर्थ)

सं. म. विनयसागर

"महाराणा कुम्भा रा भींतड़ा अर समयसुन्दर रा गीतड़ा" की प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार महोपाध्याय समयसुन्दर अकबर प्रदत्त युगप्रधान पदधारक श्री जिनचन्द्रसूरि के प्रथम शिष्य श्री सकलचन्द्रगणि के शिष्य थे। सकलचन्द्रगणि का छोटी अवस्था में स्वर्गवास हो गया था।

समयसुन्दरजी ने अपनी प्रत्येक कृतियों में 'खरतरगच्छीय श्री जिनचन्द्रसूरि के प्रथम शिष्य सकलचन्द्रगणि का मैं शिष्य हूँ' ऐसा उल्लेख किया है, किन्तु कुछ विद्वानों ने 'तपागच्छीय सकलचन्द्रगणि का शिष्य मानकर समयसुन्दरजी तपागच्छ के हैं', इस प्रकार का प्रतिपादन किया है जो कि पूर्णतया भ्रामक है।[१]

महाकववि धनपाल ने "सत्यपुर महावीर उत्सव' में जिस नगर की ओर संकेत किया है उसी सत्यपुर अर्थात् सांचोर में कवि ने जन्म लिया था। ये पोरवाल (प्राग्वाट) जाति के थे और इनके माता-पिता का नाम लीलादेवी और रूपसी था। मेरे मतानुसार इनका जन्म वि.सं. १६१० के लगभग हुआ था। वादी हर्षनन्दन ने अपने समयसुन्दर गीत में "नवयौवन भर संयम ग्रह्यौजी" के अनुसार अनुमानतः वि.सं. १६२८-३० के मध्य इनकी दीक्षा हुई होगी। वाचक महिमराज (जिनसिंहसूरि) और समयराजोपाध्याय इनके शिक्षा-गुरु थे। विक्रम सम्वत् १७०३ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन अहमदाबाद में इनका स्वर्गवास हुआ था। इनकी विशाल शिष्य परम्परा थी जो कि २०वीं शताब्दी तक चली।

समयसुन्दरजी को गणि पद वि.सं. १६४१ से पूर्व ही जिनचन्द्रसूरि ने

---

१. तपागच्छके वाचक सकलचन्द्रगणि अत्यधिक प्रसिद्धिप्राप्त विद्वान् थे, संयमी थे। उनकी अनेक रचनाएं उपलब्ध है। भ्रान्तिका कारण इनकी इतनी बडी प्रसिद्धि है। अन्यथा जान बूझकर कोई ऐसी भ्रान्ति प्रसारित करे यह असंभव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने हाथों से प्रदान किया था। वि. सम्वत् १६४९ में इनको वाचनाचार्य पद प्रदान किया गया था। विक्रम सम्वत् १६७७ के पश्चात् स्वयं के लिए पाठक शब्द का उल्लेख मिलता है अतः इससे पूर्व ही इनको उपाध्याय पद प्राप्त हो गया होगा।

कविवर समयसुन्दरजी केवल जैनागम, जैन साहित्य और स्तोत्र साहित्य के धुरन्धर विद्वान् ही नहीं थे अपितु व्याकरण, अनेकार्थी साहित्य, लक्षण, छन्द, ज्योतिष, पादपूर्ति साहित्य, चार्चिक, सैद्धान्तिक, रास-साहित्य और गीति साहित्य के भी उद्भट विद्वान् थे।

पूर्ववर्ती कवियों द्वारा सर्जित द्विसन्धान, पञ्चसन्धान, सप्तसन्धान, चतुर्विंशति सन्धान, शतार्थी, सहस्रार्थी कृतियाँ तो प्राप्त होती हैं जो कि उनके वैदुष्य को प्रकट करते हैं, किन्तु समयसुन्दरने "राजानो ददते सौख्यम्" इस पंक्तिके प्रत्येक अक्षर के व्याकरण और अनेकार्थी कोषों के माध्यम से १-१ लाख अर्थ कर जो अष्टलक्षी / अर्थरत्नावली ग्रन्थ का निर्माण किया, वह तो वास्तव में इनकी बेजोड़ अमर कृति है। समस्त भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्वसाहित्य में भी इस कोटि की अन्य कोई रचना प्राप्त नहीं हैं। 'एगस्स सुत्तस्स अणंतो अत्थो" को प्रमाणित करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना विक्रम सम्वत् १६४९ में लाभपुर (लाहोर) में की और काश्मीर-विजय-प्रयाण के समय सम्राट् अकबर को विद्वत्सभा में सुनाया था। भाषात्मक लघुगेय ५६३ कृतियों का संग्रह कर "समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि" के नाम से श्री अगरचन्द-भँवरलाल नाहटा ने विक्रम संम्वत् २०१३ में प्रकाशन किया था। इस कवि के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का परिचय प्राप्त करने के लिए मेरे द्वारा लिखित **महोपाध्याय समयसुन्दर** पुस्तक द्रष्टव्य है।

महाकवि कालिदास रचित **मेघदूत** नामक लघु काव्य जन-जन की जिह्वा पर विलास कर रहा है। इस पर जैन श्रमणों द्वारा रचित निम्न टीकाएँ प्राप्त हैं - १. आसड कवि - रचना सम्वत् १३ वीं शती, २. श्रीविजयगणि, ३. सुमतिविजयगणि, ४. चारित्रवर्धनगणि ५. क्षेमहंसगणि, ६. कनककीर्तिगणि ७. ज्ञानहंस, ८. महिमसिंहगणि, ९. मेघराजगणि, १०. विजयसूरि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेघदूत रसिक कवियों का प्रिय काव्य रहा है, इसलिए इस पर पादपूर्ति साहित्य लिखकर जैन कवियों ने कवि कालिदास को अमर बना दिया है। जैन कवियों द्वारा रचित **मेघदूत पादपूर्ति** के रूप में निम्न काव्य प्राप्त होते हैं -

१. पार्श्वाभ्युदय काव्य: जिनसेनाचार्य, प्रत्येक चरण की पादपूर्ति की गई है, डॉ. के. बी. पाठक द्वारा सम्पादित होकर सन् १८९४ में प्रकाशित हुआ है।

२. जैनमेघदूतम्: मेरुतुंगसूरि, इस पर शीलरत्नगणि महिमेरुगणि आदि की टीकाएँ भी प्राप्त है। जैन आत्मानन्द सभा भावनगर से प्रकाशित हुआ है।

३. नेमिदूतम्: विक्रमकवि: उपाध्याय विनयसागर द्वारा सम्पादित होकर सन् १९५८ में दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है।

४. शीलदूतम्: चारित्रसुन्दरगणि, सं. १४८४: यशोविजय जैन ग्रन्थमाला काशी से प्रकाशित।

५. चन्द्रदूतम्: विमलकीर्ति, सं. १६८१:

६. मेघदूतसमस्यालेख: महोपाध्याय मेघविजय, सं. १७२७: मुनि जिनविजय सम्पादित विज्ञप्ति लेख संग्रह में सन् १९६० में प्रकाशित।

७. चेतोदूतम्:

८. हंसपादाङ्कदूतम्: श्री नाथुरामजी प्रेमीने विद्वद्रत्नमाला के पृष्ठ ४६ में इसका उल्लेख किया है।

इनके अतिरिक्त जैनेतर कवियों में अवधूत रामयोगी रचित (सं. १४२३) सिद्धदूतम्: श्री हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावलि, पाटण के तृतीय ग्रन्थाङ्क के रूप में सन् १९२७ में प्रकाशित और आशुकवि पं. नित्यानन्दशास्त्री रचित हनुमद्दूतम् : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित भी प्राप्त होते है।[२]

इस ग्रन्थ में रचना सम्वत् प्राप्त नहीं है, किन्तु इसके द्वितीय अर्थ में "अस्वाधिकारप्रमत्तश' इसका अर्थ करते हुए टीकाकार ने लिखा है "साभिप्रायं

---

२. उपाध्याय विनयविजयकृत इन्दु दूत और सांप्रतमें हुए स्व. आ. श्रीधर्मधुरन्धर सूरिकृत मयूरदूत भी इसी परम्परा की रचनाएं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैतत् विशेषणं परिग्रहत्यजनेन उद्धृतक्रियत्वात्" । यह क्रियोद्धार जिनचन्द्रसूरि ने विक्रम सम्वत् १६१४ में किया था । टीकाकार जिनचन्द्रसूरि के लिए "खरतरगच्छाधीश्वर" शब्द का प्रयोग तो अवश्य करता है, किन्तु सम्राट् अकबर द्वारा प्रदत्त "युगप्रधान पद" का प्रयोग नहीं करता है, अतः इसका रचना समय १६४१ और १६४९ के मध्य का माना जा सकता है क्योंकि समयसुन्दरजी की रचना भावशतक की विक्रम सम्वत् १६४१ की प्राप्त है ।

प्रस्तुत कृति में कविवर समयसुन्दर ने टीकाकारों द्वारा सम्मत अर्थ का परिहार करके मेघदूत के प्रथम पद्य की व्याख्या में व्याकरण और अनेकार्थी कोषों की सहायता से अभिनव तीन अर्थ किये हैं जो भगवान् ऋषभदेव, युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि और सूर्य को उद्देश्य कर लिखे गये हैं ।

सन् १९५४ में श्री अगरचन्दजी नाहटा ने इस कृति की पाण्डुलिपि मुझे भेजी थी । उसी को आधार मानकर संशोधित कर प्रकाशित कर रहा हूँ । इस कृति की मूल प्रति किस भण्डार में है ? यह मेरे लिए लिखना सम्भव नहीं है, सम्भव है बीकानेर के बृहद् ज्ञान भण्डार की ही हो !

विद्वद्जनों के चित्ताह्लाद के लिए चमत्कृति प्रधान यह कृति प्रस्तुत है ।

*

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः,
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

श्री**कालिदासकृतमेघदूतकाव्यप्रथमवृत्तस्य** चतुरनरनिकरचित्तचमत्कारकृते निजबुद्धिवृद्धिनिमित्तञ्च **मूलार्थमपहाय व्याख्या** क्रियते । तत्र प्रथमं श्रीऋषभदेववर्णनमाह–

कश्चित्कान्ताविरहेत्यादि । हे ऋषभ ! हे श्रीआदिदेव ! त्वं 'अमात्वाम' इति सूत्रेण अस्मच्छब्दस्य द्वितीयैकवचने मा इति मां मल्लक्षणं स्तुतिकारकं जनं अव–रक्ष इति संटङ्कः । किंविधस्त्वं ? **कः** 'को ब्रह्मात्मप्रकाशार्ककेकिवा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युयमाग्निषु' इत्यनेकार्थवाक्यप्रामाण्यात् 'विश्वशम्भु. पत्र २१' । क-ब्रह्मा युगादिस्थितिहेतुत्वात् । अथवा पंक्तिरथ-न्यायेन ब्रह्मनाभिभूरित्यर्थः । हे **चित्कान्त** ! चिद्-ज्ञानं अर्थात्केवलज्ञानं तेन कान्तः मनोहरः चित्कान्तस्तत्संबुद्धौ हे चित्कान्त !, अतएव **हे अविर** ! 'अविशब्दो रवौ मेषे पर्वतेऽपि निगद्यते ।' इत्य**नेकार्थ-ध्वनिमञ्जरी**वचनात् अविः-सूर्यस्तद्वद्राजते यः स अविरः । अविः-पर्वतोऽर्थान्मेरुस्तद्वत् स्वर्णवर्णत्वान्निष्प्रकम्पत्वादुच्चैस्तरदेहत्वाद्वा राजते यः सोप्यविरः तत्सम्बोधनं हेऽविर ! । पुनः कंविधं मां ? हि यस्मात् हगुरुणा उदकेषु गमितं । कोऽर्थः ? 'हं हर्षे चैव हिंसायां' इथि **विश्वशम्भु**. (प. ११५) वचनात् । हं-हिंसा तदुपदेष्टा तदुपलक्षितो वा गुरुः हगुरुः, अथवा हः-क्रोधस्तेनोपलक्षितो मध्यपदलोपिसमासे गुरुर्हगुरुः । अत्र हः-क्रोधवाची । यथाह **वररुचिः** 'ह क्रोधवाचीति' (प. ४४) क्रोधश्चात्रोपलक्षणं । तेन क्रोधाद्या चत्वारोऽपि कषाया गृहीतव्याः । ततस्तेन हगुरुणा । **उदकेषु** इति, उत्प्रबलानि-उत्कटानि । 'अकं-दुःखाघयोः' इति श्री**हैमानेकार्थ**(२-१)वचनात् । अकानि-दुःखानि पापानि वा उदकानि नानाविधत्वात्तेषां बहुत्वं तेषु गमितं प्रापितमित्यर्थः । कुगुरुर्हि हिंसोपदेशदानादिना प्राणिनो दुःखेषु पातयतीति । पुनः **हे स्वाधिकारप्र** ! स्वस्य आत्मनोऽधिकारः स्वाधिकारस्तीर्थकरपदरूपः, तं प्राति-पूरयति इति स्वाधिकारप्रः, निजभक्तिमतां सतां स्वतुल्यकारकत्वात् तत्सम्बोधने हे स्वाधिकारप्र ! किंविधेन कुगुरुणा ? **मत्तशापा** मत्तः-दृप्तः ततः शापं-आक्रोशं आचष्टे इति, शापयतीति णिजि तल्लुकि च शाप्, ततः मत्तश्चासौ शाप् च मत्तशाप् तेन मत्तशापा । अथवा **अस्वाधिकालप्रं** अत्त शापा इति पदत्रयविश्लेषः कर्त्तव्यः, तदा अयमर्थः । किंविधं मां ? अस्वाधिकालप्रं न स्वः अस्वः शत्रुभूत आधिर्मानसी व्यथा अस्वाधिस्तेन कालः-मरणं अस्वाधिकालोऽसमाधिमरणं बालमरणमिति यावत् तं प्रैति प्रकर्षेण पाति-प्राप्नोति, डे प्रत्यये अस्वाधिकालप्रस्तं । हे अत्त ! हे मातः ! तद्वद्वत्सलत्वात् । अत्र श्लेषत्वाद्विसर्गनाशो न दोषाय । यदुक्तं **रुद्रटालङ्कारटीकायां नमिसाधुना** 'विसर्जनीयाभावाभावयोर्न विशेषो, यथा-'द्विषतां मूलमुच्छेत्तुं राजवंशादजायथा । द्विषद्भ्यस्त्रस्यसि कथं वृकयूथादजा यथा । १ ।' इति । किंविधेन कुगुरुणा ? शापा पूर्ववत् । किंविधं मां ? **इना**-कामेन अस्तं-क्षिप्तं । हे अ ! 'अः स्यादर्हति सिद्धे च' इति वचनात् । हे अर्हत् ! पुनः हे **ऊग्य** ! 'ऊः पालने रक्षणे च' इति अनेकार्थतिलक. (प. ८-९) वचनात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊः-रक्षणं तदुपलक्षितो 'गस्तु गातरि गन्धर्वे शब्दसङ्गीतयोरपि' इति विश्वशम्भु. (प. २५) वचनात् । गः शब्दः ऊगो दयोपदेशस्तत्र साधुः, तत्र साधौ इति ये ऊग्यस्तत्सम्बोधनं हे ऊग्य ! हे भर्त्तुः ! इनः-स्वामिनः । स्वामिन् । किंविधस्त्वं ? यक्षः ई-लक्ष्मीं अक्ष्णोति-व्याप्नोतीति यक्षः । पुनः हे **चक्रेजनकतनय** ! चक्रेण-चक्ररत्नेन ई-शोभां जनयतीति चक्रेजनकोऽर्थाद्भरतनामा चक्रवर्ती स तनयः-पुत्रो यस्य स चक्रेजनकतनयः तत्सम्बोधनं हे चक्रेजनकतनय ! । हे **अस्नानपुण्य** ! अस्नाने स्नानाभावेन । 'पुण्यं तु सुन्दरे सुकृते पावने धर्मे ।' **इति हैमानेकार्थ** (प. ३७५) वचनात् । पुण्यः-सुन्दरः अस्नानपुण्यः । 'अनध्ययन- विद्वांसो, निर्द्रव्य-परमेश्वराः । अनलङ्कारसुभगा, पान्तु युष्मान् जिनेश्वराः ।१। इत्युक्तत्वात् । तत्सम्बोधने हे अस्नानपुण्य ! । **हे स्निग्धच्छाय** ! स्निग्धा असै(रू?)क्षा कोमला इति यावत्, 'छाया पंक्तौ प्रतिमायामर्कयोषित्यनातपे । उत्कोचे पालने कान्तौ शोभायां च तमस्यपि' इति **हैमानेकार्थ** (प. ३६३) वचनात् । छाया प्रतिमा कान्तिर्वा यस्य स स्निग्धच्छायः, तस्सम्बुद्धौ हे स्निग्धच्छाय ! । किंविधेषु उदकेषु ? अतरुषु अतन्ति सततं गच्छन्ति, अचि, अताः-प्राणिनस्तेषां । 'रु शब्दे रक्षणेऽपि च भये च' इतिवचनात् **सौधाकलशात्** (प. ३७) रुः-भयेभ्यस्तानि तेषु अतरुषु । किंविशिष्टं मां ? **असतिं** 'पूजायां तिः' इति **विश्वशम्भु** (प. ६१) वचनात् । तिः-पूजा तया सह वर्तते यः स सतिः, न सतिरसतिस्तं पूजादिरहितं दरिद्रं-वराकमित्यर्थः । अत्र 'इवर्णादेरस्वे स्वरे यवरलं' इति मतान्तरमाश्रित्य पञ्चमीव्याख्याने अतरुषु अग्रे असतिं इत्यत्र उकारात्परे वकारे कृते लोकादिति च कृते अतरुषुवसतिं इति रूपसिद्धिः । हे **गिरिराम** ! वाण्यां मनोहर ! किं भूतेषु उदकेषु ? **आश्रमेषु** आ-सामस्त्येन श्रमः खेदो येभ्यस्तानि तेषु ।

नन्वत्र चतुस्त्रिंशदतिशयसंग्राहकातिशयचतुष्टयमध्ये कः केन पदेनोच्यते सूच्यते वा इत्यभिधीयते-चित्कान्तेति पदेन ज्ञानातिशयः ।१। स चापायापगमातिशयमन्तरेण न संभवति अतोऽनेनापायापगमातिशयोऽप्याक्षिप्तः ।२। तथा ऊग्येति गिरिरामेति वा पदेन वचनातिशयः ।३। भर्तुः इनेति पदेन पूजातिशयः ।४। इति चतुष्टयं ज्ञेयम् ।

श्रीऋषभदेववर्णनेन प्रथमोऽर्थः सम्पूर्णः ।।१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कश्चित्कान्तेतिकाव्यस्य, विचक्षणचमत्कृते ।
*अर्थत्रयमिदं चक्रे, **गणिः समयसुन्दरः** ॥१॥*

॥ इति प्रथमोऽर्थः ॥

***

अथ श्रीखरतरस्वच्छगच्छनभोङ्गणदिनकराणां श्रीजिनचन्द्रसूरिसूरीश्वराणां वर्णनेन प्रकारान्तरेण द्वितीयमर्थमाह–

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः,
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु ।
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

कश्चित्कान्तेत्यादि । हे **इजनकतनय** ! त्वं वसति रामगिर्याश्रमेषु इन इति सम्बन्धः । कोऽर्थः ? । इः इकारस्तेनोपलक्षितो जनः जिनः । तथा 'कं शिरो जलमाख्यातं' इति **वररुचि** (प. ७) वचनप्रामाण्यात् । कं-जलं, तद्यो-ज्यादाधाराधेययोरभेदोपचारात् प्राणयोगात्प्राणः प्राणिन इतिवत्, समुद्रस्तस्य तनयः-पुत्रः कतनयश्चन्द्रः, ततः जिनश्चासौ कतनयश्च जिनकतनयः अथवा जिनपूर्वकः कतनयो जिनकतनयः जिनचन्द्रः तस्य सम्बोधनं हे जिनचन्द्र ! श्रीमत् खरतरगच्छाधीश्वर ! । **वसतिः** रात्रिस्तद्वद्रामः श्यामो गिरिर्वसति रामगिरि-रञ्जनगिरिस्तस्मै आ-ईषत् श्रमो गमनाय खेदो येषां ते वसतिरामगिर्याश्रमाः । जङ्घाचारणविद्याचारणलब्धिमन्तः साधवः तेषु इनः-सूर्य इवाचारः(चर) तेषु मुख्यो भवेत्यर्थः । किंविशिष्टं(ष्टः) त्वं ? **चित्**-अवधारणे कः । 'कः-सुखकारी काकुर्ध्वनिविशेषः' इत्यादि **वाग्भटालङ्कारव्याख्यानात्** सुखकारी । हे **कान्ताविरहगुरुण** ! कोऽर्थः ? 'कैं गै रैं इति शब्दे' इति धातुपाठवचनात् कायति-शब्दं करोति इति अर्थात् कं-शास्त्रं वाच्यवाचकभावसम्बन्धेन वाचक-त्वात्तस्य । ततः कस्य-शास्त्रस्य अन्ते-पर्यन्ते अटति-गच्छतीति कान्ताः एवंविधो विरह इति शब्दो यस्य स कान्ताविरहः, श्री**हरिभद्रसूरिर्विरहाङ्क**त्वात्तस्य । ततः स चासौ गुरुश्च कान्ताविरहगुरुः तद्वत् 'णः प्रकटे निश्चले प्रस्तुते ज्ञानबन्धयोः' इति **सुधाकलश** (प. २२) वचनात् । णः-ज्ञानं यस्य स कान्ताविरहगुरुणः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकलशास्त्रप्रवीणत्वात् । अथवा तद्वत् गुरुः-गरिष्ठो णः-ज्ञानं यस्य स कान्ताविरहगुरुणस्तत्सम्बोधनं हे कान्ताविरहगुरुण ! पुनः हे **अस्वाधिकारप्रमत्तश** ! स्वं-द्रव्यं परिग्रहं(हः) इति यावत् तदभावोऽस्वं परिग्रहाभावः, स अधीयते यस्मिन्निति अस्वाधिः त्यक्तपरिग्रहत्वेन निर्ग्रन्थत्वात् । साभिप्रायं चैतत् विशेषणं परिग्रहत्यजनेन उद्धृतक्रियत्वात् । तथा रलयोरैक्यात् कलानां द्विसप्ततिसंख्यानां पुरुषसम्बन्धिनीनां चतुःषष्टिसंख्याकानां महिलासम्बन्धिनीनां वा समाहारः कालं, तत्प्राति-पूरयतीति कालप्रः-धर्मः । यतो हि सर्वा अपि कला धर्मादेव प्राप्यन्ते । अथवा कस्य-सुखस्य आरं-प्राप्तिं प्रातीति कालप्रः, तं मथ्नातीति कालप्रमथ्, पापं तदेव 'तकारः कथितश्चौरे' इति **वररुचि**(प. २३)वचनात् तः-तस्करस्तत्र 'शः सूर्ये शोभने शीते' (विश्वशम्भु. प. १०८) इत्युक्तत्वात् श इव-सूर्य इव यः स कालप्रमत्तशः । ततः अस्वाधिश्चासौ कालप्रमत्तशश्च अस्वाधिकालप्रमत्तशस्त-त्सम्बोधनं हे अस्वाधिकालप्रमत्तश ! तथा **हे अये** ! अपगतः इः-कामो यस्मात् सो अयिस्तत्सम्बोधने हे अये ! अदेतः स्यमोर्लुगिति सिलुक् । हे **न अस्तंगमितमहिम** ! अस्तं गमिता महिमा-महत्त्वं यस्य सः अस्तंगमितमहिमः एवंविधो न सर्वदैव जाग्रन्महिमत्वात् । अथवा अस्तंगमितो 'मो मन्त्रे मन्दिरे' (विश्वशम्भु. प. ९४) इत्युक्तत्वात्, मः-मन्त्रं सूर्यादिमन्त्रो यत्र यस्य वा स अस्तंगमितमहिमः । अथवा अस्तंगमिता 'मा वंतः स्त्री रमार्च्चयोः' (विश्वशम्भु. प. ९५) इतिवचनात् । मह्यां-पृथिव्यां मा रया-शोभा अर्चा पूजा यस्य सः अस्तंगमितमहिमः । एवंविधो न । तथा हे **अवर्षभोग्य** ! अवनं अवः-षड्जीवनिकायरक्षणं तं ऋषन्ति-जानन्तीति अवर्षाः-साधवः तेषां 'भोगस्तु राज्ये वेश्याभृतौ सुखे धनेऽहिकायफणयोः पालनाभ्यवहारयोः' इति **हैमानेकार्थ** (प. ४१-४२) वचनात् भोगः-पालनं सारणावारणादिकं तत्र साधुः । तत्र साधौ इति ये । अवर्षभोग्यः तस्य सम्बोधने हे अवर्षभोग्य ! किंविशिष्टः(ष्टः?) त्वं ? **भर्तुः** छाया-तीर्थकर प्रतिबिम्बं 'तित्थयरसमो सूरी' इत्याद्युक्तत्वात् । पुनः किंविशिष्टः त्वं ? **यक्षः** इः-लक्ष्मीस्तया युक्तानि अक्षाणि-इन्द्रियाणि यस्य सः । 'इवर्णादेरस्वे स्वरे यवरलं' इति यत्वे यक्षः रम्येन्द्रियः । पुनः हे **चक्र** ! 'चः पुंसि चेतने चन्द्रे चौरेऽहौ चारुदर्शने' इति **श्रीहैमानेकार्थत्वात्**(?विश्वशम्भु. प. ३१) । चेन-चारुदर्शनेन क्रामतीति चक्रस्तत्सम्बोधने हे चक्र ! अथवा चक्रचिह्नोपेतत्वात् चक्रः तत्सम्बोधने हे चक्र ! । तथा हे **अस्नान**-हे स्नानवर्जित ! किंविधेषु साधुषु ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्योदकेषु पुण्याय तीर्थकरचैत्यवन्दनादिरूपाय उत्-उर्ध्वं अकंते - गच्छन्ति इति पुण्योदकास्तेषु पुण्योदकेषु। पुनः किं विशिष्टेषु साधुषु ? **अतरुषु** 'तः प्रैते निःफले शान्ते' इति **विश्वशम्भु** (प. ६०) वचनप्रामाण्यात्। न विद्यते तेभ्यः प्रेतेभ्यः 'रुः सूर्ये रक्षणेपि च। भये शब्दे च' इति **सुधाकलश** (प. ३७-३८) वचनप्रामाण्यात्। रुः-भयं येषां ते अतरवस्तेषु अतरुषु। अथवा तरुषु इति कोर्थः ? वृक्षोपमेषु अनेकगुणगणपक्षिकुलाश्रयभूतत्वात्। अथवा तरुषु अर्थात् कल्पवृक्षेषु निजसेवाहेवाकिनां मनोवाञ्छितदानात्। तथा हे **स्निग्ध** ! हे मित्र ! तद्वद्धितकारित्वात्।

कश्चित् कान्तेति काव्यस्य विचक्षणचमत्कृते।
*अर्थत्रयमिदं चक्रे **गणिः समयसुन्दरः** ॥*

[द्वितीयोऽर्थः संपूर्णः]

***

[अथ तृतीयोऽर्थः]

अथ श्रीसूर्यदेववर्णनेन तृतीयमर्थमाह-अत्र कोपि जनो जगदुद्योतकारकं जगच्चक्षुर्भूतं परमोपकारविधायकं श्रीसूर्यं अस्तमयं दृष्ट्वा प्राह-

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः,
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

कश्चित्कान्तेत्यादि। हे **इन** ! हे सूर्य ! त्वं 'अस्तः क्षिप्ते पश्चिमाद्रौ' इति **हैमानेकार्थ** (प. १६०) वचनात्, अस्तं पश्चिमाद्रिं अस्ताचलं इति यावत्, मा अम-मा गच्छ मा अस्तमय सदा प्रकाशवान् भवेत्यर्थः। आशीर्वचनमेतत् इत्यन्वयः। किंविशिष्टः त्वं ? 'हि स्फुटार्थनिश्चयहेतुषु पादपूरणविशेषयोरपि' इति **अव्ययार्थवृत्तौ** उक्तत्वात्। हि-स्फुटं कः-प्रकाशस्तद्योगात् कः प्रकाशवानित्यर्थः। पुनः किंविशिष्टः त्वं ? **चिनोति**-अभिमतमर्थं निज-सेवाभिधायिनामिति चित्। अथवा चित् अवधारणे। हे **कान्ताविरह** ! कान्तः-मनोहरो विशिष्टफलदानात् उच्चो अविर्मेषो मेषराशिर्यस्य स कान्ताविः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेषराशिस्थस्य सूर्यस्य उच्चत्वात् । यदुक्तं- 'रवेर्मेषतुले प्रोक्ते' इत्यादि । तथा लहः 'लमम्बरे' इति **विश्वशम्भु** (प. १०४) वचनात् । ले-आकाशे । 'हशब्दो हास्यरसे चतुर्म(र्मु)खे चैव राजहंसे च' इति श्री **कालिदास**वचनात् । हः-राजहंसो लहः-आकाशसरोवरे राजहंसशोभां विभ्राण इत्यर्थः । ततः कान्ताविश्वासौ लहश्च कान्ताविलहः । रलयोरैक्यं चित्रादित्वात्र दोषाय । अथवा कान्तेषु-उत्तमेषु वा अविरहः-विरहाभावो यस्य स कान्ताविरहः, तेषां प्रत्यक्षत्वात् । तत्सम्बोधनं हे कान्ताविरह ! पुनः हे **गुरुण** ! 'णः प्रकटे निष्कले च प्रस्तुते ज्ञानबन्धयोः' इति **सुधाकलश**(प. २२) वचनात् । गुरोः-बृहस्पतेः सकाशात् णः-ज्ञानं यस्य स गुरुणः देवाचार्यत्वेन बृहस्पतेर्देवानां गुरुत्वात् । अथवा गुरोः-बृहस्पतेर्णो-बन्धो यत्र स गुरुणः । रविमण्डले सर्वेषां ग्रहाणां अस्तत्वात् । तथा हे **अस्वाधिकार** ! स्वानि मित्राणि कमलानि अब्जबान्धवत्वाद्रवेः तद्विरुद्धानि अस्वानि अर्थात् कुमुदानि तेषां 'आधिर्मनोर्त्तौ व्यसनेऽधिष्ठाने बन्धकोशयोः' इति **हैमानेकार्थ** (प. २४२) वचनात् आधिं-बन्धं करोति इति अस्वाधिकारः । अथवा शसयोरैक्यात् अश्वेषु सप्तसंख्यतुरङ्गमेषु आधिः-अधिष्ठानं करोतीति अस्वाधिकारः । अथवा अश्वेषु अधिकारो वाहनादिरूपो यस्य सः अस्वाधिकारः तत्सम्बोधनं हे अस्वाधिकार ! तथा हे शापे प्रमत्त ! शापदानविषये अलस ! न तु दुष्टदेवादिवत् शापदानादितत्परः । **हे अन** ! 'न पुनः बन्धबुद्धयोः' (अमरचन्द्रीय एकाक्षरनाममाला प. १२) इति वचनात् बन्धनरहित ! प्रकट इति यावत्, **हे गमितम** ! 'गमोऽध्वद्यूत-भेदयोः' इति हैमानेकार्थ (३२४) वचनात् । गमः-मार्गो यस्यास्तीति गमि मार्गप्राप्तं गतमित्यर्थः । लोके हि मार्गप्राप्तस्य गतमिति व्यवहृतत्वात् । ततो गमि-गतं तमं-तिमिरं यस्मादसौ गमितमः । अथवा गमनं गमः पलायनं तदस्यास्तीति गमि नाशवत्तमं-तिमिरं यस्मादसौ गमितमस्तत्सम्बोधने गमितम !। तमशब्दोऽ-कारान्तोऽप्यस्ति । **हे वर्षभोग्य** ! वर्षाणि क्षेत्राणि भरतादिरूपाणि तेषां तेषु वा भोगः परिभोगाचाररूपो वर्षभोगः तत्र साधुः 'तत्र साधौ ये' इति ये वर्षभोग्यस्तत्सम्बोधने **हे वर्षभोग्य** ! । पुनः किं० **भर्तुः** 'भं धिष्ण्ये मेषादौ' इत्य**नेकार्थ**वचनात् (महीपसचिवकृत एकाक्षरसंज्ञः काण्डः ३३) । भैर्मेषादि-राशिभिरश्विन्यादिनक्षत्रैर्वा ऋतवो वसन्तादिसंज्ञिका यस्मात्स भर्त्तुः । पुनः किंभूतो यक्षः ? 'इर्भुवि श्रिया' इति **तिलकानेकार्थ** (प. ७) वचनात् । ई-भुवं अक्ष्णोति प्रकाशकरणेन व्याप्नोतीति यक्षः । हे **चक्रेजन** ! चक्राः-चक्रवाकपक्षिणः तेषां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषु वा ई:-श्री: तस्या: जन: जननं यस्मात्स चक्रेजन:, चक्रबान्धववत् सूर्यस्य । सति हि सूर्ये चक्रवाकपक्षिणां परमानन्द: समुत्पद्यते । तत्सम्बोधने **चक्रेजन** ! पुन: हे कतनय ! क:-यमस्तनयो यस्य स कतनयस्तत्सम्बोधने हे कतनय !। हे अस्नान ! न विद्यते स्नानं तैलककोटिकादिरूपं यस्मिन् स: अस्नानस्तत्सम्बोधने **हे अस्नान** ! । रविवारे हि स्नानं तापकारि स्यात् । यदुक्तं- 'आदित्यादिषु वारेषु, ताप: कान्तिर्मृतिर्धनं । दारिद्र्यं दुर्भगत्वं च कामाप्तिं स्नानत: क्रमात् ॥' किंविध: ? हे **उदकेषु पुण्य** ! उत्-ऊर्ध्वमकन्ति-गच्छन्ति चारेण चरन्तीति उदका:-ग्रहा: तेषु 'पुण्यं तु सुन्दरे सुकृते पावने धर्मे' इति **हैमानेकार्थ** (प. ३७५) वचनात्, पुण्य:-सुन्दरस्तेषु मुख्येत्यर्थ: । पुन: हे **स्निग्धच्छाय** ! स्निग्धा स्नेहवती छाया-निजभार्या यस्य स तत्सम्बोधने हे **स्निग्धच्छाय** ! पुन: किम्भूतेषु उदकेषु ? अतरुषु अनानां प्राणिनां रु:-रक्षणं येभ्यस्ते उदकास्तेषु उदकेषु । हे **वसतिल** ! वसतिं-रात्रिं लुनातीति वसतिल ! । किम्भूतेषु उदकेषु ? **गिर्याश्रमेषु** गिरि:-पर्वतोऽर्थान्मेरु: तस्मादा-सामस्त्येन सर्वत: श्राम्यतीति गिर्याश्रमेषु ।

[तृतीयोऽर्थ: संपूर्ण:]

***

कश्चित्कान्तेति काव्यस्य विचक्षणचमत्कृते ।
अर्थत्रयमिदं चक्रे, **गणि: समयसुन्दर:** ॥१॥ श्री ॥

***

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पं. मानसागरकृत मेघदूत-खण्डना ॥ अपूर्ण ॥

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

'मेघदूत' ए महाकवि कालिदासनी अनुपम अमर काव्यकृति छे. आ काव्यनी अनुकृतिरूपे के समस्या(पाद)पूर्तिरूपे केटकेटलां दूतकाव्यो जैन-जैनेतर विद्वानो द्वारा रचायां छे ! सिद्धदूत, शीलदूत, चेतोदूत, चन्द्रदूत, नेमिदूत, मेघदूतसमस्यालेख, इन्दुदूत, मयूरदूत - अने एवां तो अढळक काव्यो जडे छे, जे मेघदूतना प्रत्येक श्लोकना एक-मोटे भागे अन्तिम-चरणने उपाडीने बाकीनां ३ चरणोनी नवी रचनारूप होय. मेरुतुङ्गाचार्ये तो वळी 'जैनमेघदूत' पण रची आप्युं ! तो केटलाये जैन मुनिओए मेघदूत पर टीका पण लखी छे.

सन्देश-व्यवहार ए आपणी-मानवीय संस्कृतिना विकासनुं एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु छे. स्थूल के बाह्य व्यवहार जगतमां सन्देशव्यवहारनुं जेम खास मूल्य छे, तेम मनुष्यना भावजगतमां, स्नेह, मैत्री, भक्ति वगेरेरूप भावात्मक के लागणीओना जगतमां पण सन्देशव्यवहारनुं मोटुं मूल्य छे. आ मूल्य कालिदासने सौथी वहेलुं अने वधु समजायुं एटले तेणे तेनो मेघदूतमां विनियोग कर्यो. 'इश्के मिजाजी'नी आ काव्यरचना एक अपार्थिव अने तेथी अलौकिक प्रीतिनी कथा वर्णवती रचना छे. पछीथी घणा कविओ आने अनुसर्या छे, अने 'मेघ' जेवा विविध पदार्थोने भौतिक परिवेश अर्पीने तेना द्वारा पोतानां पात्रो वच्चे सन्देश-व्यवहार करावतां रह्या छे.

जैन कविओनुं चित्त 'इश्के हकीकी' प्रति वधु ढळतुं होय छे. एटले तेमणे रचेलां आ पादपूर्तिरूप दूतकाव्योनो सूर, संसारस्थ प्राणीनो परमात्मतत्त्व साथेना सन्देश-व्यवहारनो रह्यो छे. क्यारेक पोताना इष्ट परमात्मा साथे पत्रसन्धान के वार्तालाप, क्यारेक आत्मबोध, तो क्यारेक पोताना पूज्य गुरुजनो प्रत्ये विज्ञप्ति - एम विविध भावो प्रगटावतां आ दूत-पत्र-काव्यो जैन कविओ द्वारा रचायां छे. तेमांनां घणां बधां प्रसिद्ध पण थयां छे.

अत्रे जे रचना प्रगट थई रही छे, ते उपरोक्त तमाम रचनाओ करतां तद्दन जुदीज भातनी रचना छे, आ रचना नथी समस्या (पाद) पूर्तिरूप के नथी अनुकृतिरूप. आमां तो कालिदासना मूळ मेघदूतने यथावत् रहेवा दईने तेना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्दन नवा, विलक्षण, आधुनिक अर्थघटननो एक समर्थ प्रयास थयेलो जोवा मळे छे. कर्ता पोते ज प्रारम्भना श्लोकमां सूचवे छे के - "मेघदूतना नूतन अर्थो द्वारा हुं अकबरनी स्तुति करीश" - (पद्य ६).

एकाक्षरी अने अनेकार्थी शब्दकोशो, तथा व्याकरणना केटलाक विचित्र नियमो अने सूत्रोनो आधार लईने, मेघदूतना श्लोकोना प्रत्येक पदनी तोडफोड के जोडतोड करीने, तेना नवा ज अर्थ घटाववानुं दुर्घट के विकट प्रयोजन कविए साधी बताव्युं छे, जे अजोड छे, अने विस्मयप्रेरक पण. तेमणे पोते, आथी ज, आने 'मेघदूत-खण्डना' एवा नामे ओळखावेल छे. खण्डना एटले तोडफोड.

तपगच्छपति जैनाचार्य हीरविजयसूरि अने दिल्लीपति अकबर- ए बेनो सम्बन्ध तो इतिहाससिद्ध अने जगप्रसिद्ध छेज. ते बन्ने पात्रोनां गुणगान गावाना लक्ष्यने केन्द्रमां राखीने ते काळे अनेक कृतिओ रचाई होवानुं पण हवे सुपेरे जाणीतुं छे. परन्तु ते प्रयोजनने माटे 'मेघदूत' जेवा प्रेमकाव्य के सन्देशकाव्यनो उपयोग करवानुं सूझे, ते कवि विलक्षण प्रतिभाना स्वामी ज होवा जोईए, एमां शंका नथी.

अलबत्त, आवी रीते काव्यनां तमाम पदोने तोडी--जोडीने नीपजाववामां आवता अर्थो सुघट के सुगम होय छे तेवुं तो जराय नथी. बल्के आवुं करवाथी क्लिष्टता अने दुर्गमता ज वधती जणाय छे. तो पण, प्रसिद्ध वस्तुना प्रचलित अर्थोने साव छोडी दईने तेना नवा ज अर्थो नीपजाववा, ए कांई सामान्य अने सामान्य बुद्धि-प्रतिभानुं काम तो नथी ज नथी, एटलुं स्वीकारवुं ज रह्युं.

पं. मानसागरजी ए हीरविजयसूरिशिष्य पं. बुद्धिसागरजीना शिष्य हता एवुं, आ विवरण-कृतिना ४२ मा पद्यने अन्ते पोते आपेल पुष्पिका परथी नक्की थाय छे. तेमने विषे बीजी माहिती प्राप्य नथी, पण 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' (मो. द. देसाई, पृ. ५९७)मां मळती नोंध प्रमाणे, "त. विजयसेनसूरि-राज्ये (सं. १६५२-१६७१) बुद्धिसागर शि. मानसागरे शतार्थी पर वृत्ति रची." - ए परथी १७मा शतकना पश्चार्धमां तेओ विद्यमान होय तेम अनुमानी शकाय छे. आ सन्दर्भमां शतार्थी--वृत्तिनो जे उल्लेख थयो छे, ते प्रायः सोमप्रभाचार्यकृत शतार्थी (१ श्लोकना १०० अर्थ) उपरनी वृत्ति होय तो बनवाजोग छे. जोके मध्ययुगमां तो आवा विविध शतार्थी-ग्रन्थो रचाया छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेघदूत-खण्डनानी आ वाचना, २७ पानांनी एक, १७मा शतकमां ज लखायेली जणाती हाथपोथीनी जेरोक्स प्रतिकृति उपरथी तैयार थई छे. प्रति अशुद्ध छे. केटलोक अंश छूटी गयो छे: पत्रो तूटतां नथी छतां पाठ तूट्यो छे तेमां लेखकनुं अनवधान काम करी गयुं हशे तेम लागे छे.

आ नकल मने मुनिराज श्रीधुरन्धरविजयजी महाराजे केटलांक वर्षो पूर्वे आपी हती. प्राय: ते तेओना निजी संग्रहनी प्रति हशे. आ रचना अधूरी छे. ते आखी क्यांक ने क्यांक होवी ज जोईए. एक धारणा मुजब आगराना धर्मलक्ष्मी ज्ञानभण्डारमां आनी पूर्ण प्रति हती. आ संग्रह हाल कोबाना श्रीकैलाससागर-सूरिश्रुतभण्डारमां होवानुं सांभळ्युं छे. जो ते आखी प्रति मळी शकशे, तो आ आखी कृतिनुं सम्पादन करवानी भावना रहे छे.

मेघदूतमां विश्राम के सर्ग एवा विभाग नथी. फक्त पूर्वमेघ अने उत्तरमेघ एम बे ज विभाजन होय छे. परन्तु अहीं तो प्रथम विश्राम ४२ पद्योमां पूरो थतो जोवा मळे छे, अने पछी १२ ज पद्यो थतां ज प्रथम सर्ग पूर्ण थयेलो वर्णवायो छे. अध्येताओ माटे आ मुद्दो नोंधपात्र छे. ५४मा पद्यनी वृत्ति प्रतिमां ज नथी; पद्यनो पाठ आपीने प्रति पूरी थई छे.

परिशिष्टरूपे प्रतिगत पद्यो तेमज मुद्रित पुस्तकगत पद्योनी तालिका आपेल छे, जे अभ्यासीओ माटे उपयुक्त बने तेम छे. स्व. पण्डित दलसुखभाई मालवणिया ला. द. विद्यामन्दिरना नियामक पदे हता त्यारे एक एवो विचार तेमणे व्यक्त करेलो के "जैन साधुओए कालिदास-माघ-भारवि-श्रीहर्ष वगेरे महाकविओनां महाकाव्यो पर अनेक टीकाओ लखी छे. तेनी पोथीओ पण विपुल मात्रामां प्राप्य छे. ते पोथीओमां नोंधायेल ते ते काव्योनी वाचनाओ नोंधाय तो ते तमाम काव्योनी वधु सशक्त अने वधु साची के सारी वाचनाओ उपलब्ध अवश्य थाय." प्रस्तुत टीका-कृतिमां जोवा मळता अमुक पाठ ते आ वातने पुष्टि आपी जाय छे. आ बहु रसप्रद तेमज महत्त्वपूर्ण मुद्दो छे.

आ प्रति परथी कृतिनी सुवाच्य नकल मुनि श्रीकल्याणकीर्तिविजयजीए वर्षो पूर्वे करी आपेली छे. प्रतिनी नकल आपवा बदल मुनिमित्र श्री धुरन्धरविजयजीनो ऋणस्वीकार करुं छुं. आनी अन्य प्रति/प्रतिओ मेळवी आपवा विद्वज्जनोने - मुनिराजोने विज्ञप्ति करुं छुं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पं. श्रीमानसागर विरचिता

मेघदूत-खण्डना

॥ ९० ॥

प्रसादो रविवद्यस्यास्तमःसंहारकारणे ।
सद्यः प्रसद्य सा देयात् विद्यां मे श्रीसरस्वती ॥१॥

विश्राणयतु सा श्रीणां श्रेणिं श्रीजिनमण्डली ।
नखत्विषः पुरो यस्यां भानुः खद्योतपोतति ॥२॥

श्रीमन्तः सूरयः सन्ति **श्रीहीरविजयाभिधाः** ।
क्रिया सुष्टु प्रिया येषां क्रियासुस्ते सुखश्रियम् ॥३॥

पद्मा पुरःस्थिता येषां प्रत्यक्षा च सरस्वती ।
सुसिद्धः सूरिमन्त्रोऽपि धर्मो येषामकैतवः ॥४॥

तान् समाहूतवान् भूमान् गुरूनिव सुरेश्वरः ।
रहस्यं सर्वशास्त्राणां जिज्ञासु**र्यवनेश्वरः** ॥५॥

तेषां गुणावली येन वर्णिता निजपर्षदि ।
मेघदूतनवीनार्थैस्तं कवे**ऽकबरं** नृपम् ॥६॥

तस्याद्यं पद्यम्-

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्त्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

कश्चित्कान्तेत्यादि- चित्कान्त ! हे बुद्धिरम्य ! हे अविरह ! हे विरहवर्जित ! केन सह ? गुरुणा मातापित्रादिना । यदाह-

माता पिता कलाचार्य एतेषां ज्ञातयस्तथा ।
वृद्धा धर्म्मोपदेष्टारो गुरुवर्गः सतां मतः ॥१॥

अथाऽत्रैव **श्रीअकबर**नामाकर्षणपूर्वं सम्बोधनमाह- कः ककारः अन्ते यस्य स कान्तः । कान्तश्चासौ अः अकारश्च कान्ताः । अथ बवयोरैक्यात् कान्ताश्च बः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बकारश्च कान्ताबौ तौ विद्यते यस्मिन्निति कान्ताबी । ईदृशः रः रकारो यस्य नाम्नि स कान्ताबिरः तस्य सम्बोधनं हे **कान्ताबिर ! हे अकबर** ! । हः पादपूरणे । अथवा हकारयुक्तो यो गुरुः स हगुरुः । ततः हगुरुतः **श्रीहीरविजयगुरु**तो णो ज्ञानं आश्रवादिविरमणरूपं यस्य । "णः प्रकटे निःफले च प्रस्तुते ज्ञानबन्धयो"रिति **सुधाकलश**वाक्यात् । सः । तस्य सं. हे [ह]गुरुण ! अथवा हः ईश्वरः गुरुर्बृहस्पतिः । तद्वत् णो ज्ञानं यस्य स तथैव । "आत्मीयः स्वः स्वकीयश्चे"ति वचनात् - अस्वा अनात्मीयत्वात् वैरिणस्तेषां आधिं मानसीं व्यथां करोतीति, अथवा तेषां आधिर्मानसी व्यथा कारा बन्दिग्रहं(गृहं)च यस्मात् सः । तस्य सम्बोधनं हे अस्वाधिकार ! अथवा न स्वेन द्रव्येण स्वत आत्मतो वा अधिकं आरं अरिसमूहो यस्य स तथैव ।

"शं श्रेयसि सुखेऽव्यय"इति **सुधाकलश**वचनात्, शानि मङ्गलानि । "शं शुभे" इति **हैम**वाक्यात् वा आप्नोतीति अचि तस्य सं. हे शाप ! । हे इन ! हे स्वामिन् ! । कस्य ?, भर्तुः देशाधिपतेः । अथवा भर्ता देशादीनां अधिभूः तस्य मध्ये इनः सूर्यः प्रतापोदग्रत्वात् । चक्रेण-सेनया ई लक्ष्मीस्तस्या जनका उत्पादकाः तनयाः पुत्रा यस्य सः । तस्य सं० हे चक्रेजनकतनय ! । अः कृष्णस्तद्वत् ता लक्ष्मीर्यस्य स । तस्य सं. हे अत ! । स्निग्धानां मित्राणां छाया शोभा यस्मात् सः । तस्य सं० हे स्निग्धच्छाय ! । त्वं पुण्योदकेषु दानादिसुकृतजलेषु वसतिं रात्रिं यावत् । 'कालाध्वनोर्नैरन्तर्ये द्वितीया' । त्वं न न अस्नाः । 'द्वौ नञौ प्रकृत्यर्थं सूचयत' इति न्यायात् अस्नाः स्नानं कृतवानित्यर्थः । त्वं किंविशिष्टः ?, को ब्रह्मा सकलकार्यकर्तृत्वात् । 'चिती संज्ञाने', चेतयती[ति]क्विपि चित् । पुनः किं विशिष्टः ?, 'मदी हर्षे', क्तप्रत्यये मत्त इति सिद्धम् । प्र-प्रकर्षेण मत्तः-हर्षितः प्रमत्तः । "मत्ता हर्षभरात्सुखं सुरेन्द्रा" इति वचनान्मत्तशब्दः क्षीबतावाचकोऽपि न दुष्टः । पुनः किंविशिष्टः ?, "महावुत्सवतो(ते)जसी" इति वाक्यात् महस्तेजोऽस्याऽस्तीति मही, अंशुमत्त्वात् सूर्यः । "मास्तु मासनिशाकरे" इति वाक्यात् माश्चन्द्रः । अस्तं प्रति गमितौ प्रापितौ महि-मासौ प्रतापसौम्याधिक्यात् सूर्या-चन्द्रमसौ येन सः अस्तङ्गमितमहिमाः । पुनः किंविशि० ?, वर्षं भरतक्षेत्रं तस्य भोगः पालनमस्यास्तीति वर्षभोगी ।

"भोगः सुराजे वेश्याभृतौ सुखे" ॥३८॥-
धनेऽहिकायफणयोः पालनाभ्यवहारयोः ॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा वर्षस्य-भरतक्षेत्रस्य भोगः-सुखं धनं वाऽस्याऽस्तीति वर्षभोगी। ए-ऐ हे-हैवदामन्त्रणे । भा-कान्तिस्तस्यै ऋतवो वसन्ताद्या यस्य सः । भर्तुः इति । इत्थमपि व्याख्येयम्। पुनः किं किं वि० ?; यक्षः-धनदः, दानसौ(शौ)ण्डत्वात्। अथवा यो-यमस्तस्मिन् क्षःराक्षसः, विध्वंसकत्वात् । 'क्षः क्षेत्रे रक्षसी''ति वचनात्। पुण्योदकेषु किंविशिष्टेषु ?, रुषु-रक्षणेषु संसारात् ''रुः सूर्ये रक्षणेऽपि चे'ति वाक्यात्। पुनः किंविशि० ?, रामः- रामचन्द्रस्तद्वद्गिरयः-पूज्या आश्रमा-ब्रह्मचर्यादयश्चत्वारो येभ्यः तानि रामगिर्याश्रमाणि, तेषु तथैव । अथवा रामः-रामचन्द्रः, स एव गिरिः-पर्वतः, तत्र आश्रमो-गृहं येषां तानि तेषु तथैव ॥१॥

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः सकामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥२॥

व्याख्या - **तस्मिन्नद्रौ इत्यादि**। स श्री**अकबरः** तस्मिन् अद्रौ । अतन्तीति क्विपि अतो-जीवाः, तेषां रुः रक्षणं यस्मात् स अद्रुः, तस्मिन् अद्रौ-श्रीगुरौ कामी इच्छावान् अस्ति । ''यत्र नान्यत् क्रियापदं तत्राऽस्ति-भवतीति क्रिया अनुक्ताऽपि प्रयोक्तव्या'' इति न्यायात् । आसान्-याचकान् । आ-लक्ष्मीस्तस्यां तस्या वा आशा- 'शसयोरैक्यात्' वाञ्छा विद्यते तेषां ते आशाः-याचकाः, लक्ष्मीवाञ्छक-त्वात्। तान् आशान् आं-लक्ष्मीं नीत्वा-प्रापय्य, नीत्वेत्यत्र 'आ' शब्दविश्लेषः। स किंविशिष्टः ? - चिद्-बुद्धिः अबलाः-स्त्रियः, आ-लक्ष्मीः, विविधं विशिष्टं वा प्राति-पूरयतीति विशेषणसामर्थ्यात् विप्रो-धर्मः । अथवा विप्रा-ब्राह्मणाः । एभिर्युक्तः सहितः सः चिदबलाविप्रयुक्तः । ''त्रिवर्गसंसाधन-मन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्ये''[१]ति वचनादनेन विशेषणेनाऽस्य त्रिवर्गसाधनं प्रोक्तम्। पुनः किं वि०?, कनकवत् सुवर्णवत् बलं-रूपं यस्य स कनकबलः । तथा यो- यमस्तस्य भ्रंशो-ऽधःपतनं पुण्यकरणादिना यस्मात् स यभ्रंशः । तथा रिक्तान् - धनहीनान् प्रान्ति-पूरयन्ति रिक्तप्राः, ईदृशाः कोष्ठा-धान्यागाराणि यस्य स रिक्तप्रकोष्ठः । ततः कर्मधारयः । पुनः किंवि० ?, वप्रा-दुर्गाः चित्रकूटादयः,-क्रीडाः-जलादीनां केलयः, तथा परिणताः तिर्यग्घातिनः अथवा परिणताः-

१. सोमप्रभाचार्यः सूक्तमुक्तावल्याम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वयःप्राप्ताः गजाः-दन्तिनः, तथा प्रेक्षणानि-नाटकानि, एते सन्त्यस्य स वप्रक्रीडापरिणगतजप्रेक्षणी । अद्रौ-श्रीगुरौ किंविशिष्टे ?, कति । क इव-मित्रमिवाचरति, शतरि कन्, तस्मिन् कति । "कः सूर्य-मित्र-वाद्यग्नि-ब्रह्मात्म-यम-केकिषु" इति **सुधाकलशः** । पुनः किंवि० गुरौ ?, आषाढस्यप्रथमदिवसे-आषाढो व्रतिनां दण्डस्तेन स्यायन्ते गच्छन्तीति आषाढस्याः-'शसयोरैक्यात्' व्रतिनः । तेषां पूज्यत्वात् प्रथम आद्यः । अथवा आषाढे-आषाढमासे एव, न तु श्रावणादौ, स्यायन्ते-चलन्ति-विहरन्तीति डप्रत्यये आषाढस्याः-साधवः । श्रावणादौ विहाराभावात् । तेषां मध्ये प्रथमः-आदिमः स आषाढस्यप्रथमः । तथा दिवस्य-स्वर्गस्य सा-लक्ष्मीर्यस्मात् स दिवसः । 'दिवं खे त्रिदिवे दिने" इति वाक्यात् । ततः कर्मधारयः । तस्मिन् आषाढस्यप्रथमदिवसे । स क इत्याह-यं-नरेन्द्रं दानाधिक्यात् मेघमा-जलद-लक्ष्मी[:]ददर्श-दृष्टवती । यं किंवि०?, आश्लिष्टा-आलिङ्गिता । सातो-लक्ष्मीतः नुः-स्तुतिर्येन सः, तं आश्लिष्टसानुम् ॥२॥

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः केतकाधानहेतो:
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कण्ठाश्लेषे प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥३॥

व्याख्या - तस्येत्यादि । तस्य श्रीनरेन्द्रस्य राजरा अपि - राजद्रव्यमपि, "राः स्वर्णे जलदे धने" इति वाक्यात् । पुरो-नगर्याः कथं सुखभयत्राणं दध्यौ-चिन्तयामास । "कं नीरसुखमूर्द्धसु" इति, "थो भवेत् भयरक्षणे" इति वाक्यात् कं च थश्च कथं । तत् किं कृत्वा ?, चिरं स्थित्वा-गतिनिवृत्तिं विधाय । राजराः किंवि० ?, अन्तर्मध्ये शरीरस्य बाष्पो-दाहो यस्मात् सः । "सन्तापः सञ्ज्वरो बाष्फः" इति वचनात् । अन्तर्बाष्पः । यद्वा अन्तर्मध्ये बाष्फः-सन्तापः-दुःखमिति यावत् यत्र सः अन्तर्बाष्फः । इदं द्रव्यस्य स्वभावकीर्तनम् । यतो द्रव्यं स्वभावादेव दुःखकारि । यतः-

द्रव्यानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे ।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःखभाजनम् ॥१॥ इति ।

पुनः किंवि० ?, अनु-पश्चात् चरतीति अनुचरः । तस्य किंवि० ?, जस्य जेतुः अर्थात् शत्रूणाम् । "जस्तु जेतरीति" वचनात् । पुरः किंविशिष्टायाः ?,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केतकाधानहेतोः । केतकानां-केतकीवृक्षाणां उपलक्षणत्वात् वासन्ती-मालती-मागधीप्रभृतीनां आधानस्य-उत्पत्तेः हेतुः-कारणं या सा, तस्याः । तस्य कस्येत्याह - यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् यस्य श्रीनरेन्द्रस्य चेतो दूरसंस्थेऽपि जने लोकऽन्यथावृत्ति-अन्यथाभावं नो भवति । "अमा-नो-ना प्रतिषेधे" इति वाक्यात्, न स्यादित्यर्थः । चेतः किंवि० ?, सुखमस्यातीति सुखि तत् पुनः कण्ठाश्लेषप्रणयिनि-पुत्र-मित्र-कलत्रादौ अन्यथावृत्ति किं स्यात् अपि तु न स्यादित्यर्थः । कण्ठाश्ले० किं विशिष्टे ?, मेघालोके-मेघवत् आह्लादकत्वात् सौम्यत्वात् वा । आलोको-दर्शनं यस्य स तस्मिन् ॥३॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीविताालम्बनार्थं
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्थाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥४॥

व्याख्या-प्रत्यासन्नेत्यादि । हे प्रत्यासन्न ! राजरङ्कादिविज्ञप्तिश्रवणे हे सन्निहित ! हे दयिताजीवित ! वल्लभाजीवित ! हे जीमूत ! 'भीमो भीमसेन' इत्यादिन्यायात् हे जीमूतवाहननृप ! लोकानां बाह्यप्राणभूतधनदानात् । यदुक्तम्-

"कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः ॥" इत्यादि । अयीति कोमलामन्त्रणे । "कुटः कुम्भः करीरश्चे"ति **नाममाला**वचनात्कुटाज्जायते इति कुटजः, तस्याऽऽमन्त्रणं हे कुटज ! - कुम्भजन्मन् ! शत्रुसमुद्रशोषणात् । हे इन ! हे सूर्य ! क्व ? "ई नभसि ई भुवि-श्रिया" मिति **महीप**वाक्यात् । ई-भूमि-सैव नभः-आकाशस्तत्र । कल्पितौ अर्थायौ-पूजा-लाभौ येन सः, तस्याऽऽमन्त्रणं हे कल्पितार्थाय ! तस्मै-पुंसे । तस्मै कस्मै ?, इत्याह- 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' यः पुमान् प्रीत-इष्टो भवति इति तस्मै । "यत्र नान्यत् क्रियापदं तत्राऽस्ति भवतीत्यादिक्रियाऽनुक्ताऽपि प्रयोक्तव्ये"ति न्यायः । कैः कृत्वा ? कुसुमैः-पुष्पैः । किंविशिष्टैः ?, अग्रैः-प्रधानैः । स्वेषु-आत्मीयेषु-ज्ञातौ वा अगः पर्वतः तुङ्गत्वात् अथवा सुष्ठु आ लक्ष्मीः तां गच्छति प्राप्नोतीति तस्याऽऽमन्त्रणं हे स्वाग ! । स भवात्(न् ?) तं श्रीगुरुं प्रति व्याजहार बभाषे । तं किंविशिष्टं ? आलम्बनार्थं-आलम्बनाः पततां अवष्टम्भदायका ईदृशाः अर्थाः सूत्राणां यत्र यस्य वा स तं तथैव । अथवा आलम्बनस्याऽर्थः प्रयोजनं यस्मात् स तम् । तथा पुनः किं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि० ?, स्वकुशलं - स्वस्य - आत्मीयस्य - ज्ञातेर्वा कुशलं - कल्याणं यस्मात् सः, तं तथैव । पुनः किंवि० ?, इं- कामं रूपवत्त्वात् । पुनः किंवि०?, प्रवृत्तिः- प्र-प्रकृष्टा-असावद्या वृत्तिर्वर्तनं यस्य ।

"अहो जिणेहिं असावज्जा वित्ती साहूण देसिया ।"

इत्यागमोक्तेः स तं तथा । पुनः किंविशिष्टं ?, प्रीतिप्रमुखवचनं-प्रीतिं-सौहार्द्दं प्राति-पूरयतीति ड प्रत्यये प्रीतिप्रं ईदृशं मुखं-वदनं तथा वचनं-वाक्यं च यस्य स तं तथैव । भवान् किंविशिष्टः ?, हारः जनानां भूषाकरत्वात् । पुनः किंवि० भवान् ?, इष्य इव-वसन्त इवाऽऽचरन्-इष्यन्, शतरि, जनानां (नं) दकत्वात् । अत्र "स्वरे यत्वं चे"ति सूत्रेण विसर्गस्य यकारः ॥४॥

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाऽचेतनेषु ॥५॥

व्याख्या - धूमज्योतिरित्यादि । तं श्रीगुरुं सन्देशार्था इति ययाचे-याचितवान् । सं-शोभनं देशेभ्योऽर्थं-द्रव्यम् । असी गत्यादानयोरिति असति-आदत्ते क्विपि समर्थविशेषणात् । सन्देशार्थाः नृपः(पाः) देशेभ्योऽर्थग्राहकत्वात् । इतीति किं हे पातः ! - हे रक्षक ! केषां ?, धूमज्योतिःसलिलमरुताम् । धूमेन युक्तो यो ज्योतिः-वह्निः, तथा सलिलं-जलं, तथा मरुत्-वायुः, एषां द्वन्द्वः । ततस्तेषां हे सन्-साधो, इ इत्यामन्त्रणे । प्रतिपक्षः 'परो रिपु'रिति वाक्यात् पराः-शत्रवः सन्त्यस्मिन् असौ परी । न विद्यते ईदृशः शत्रुरहितत्वात् गणो-गच्छो यस्य सः । अथवा अः-कृष्णस्तद्वत् सर्वव्यापितया परि-समन्तात् चतुर्दिक्षु गणो यस्य सः । तस्याऽऽमन्त्रणे हे अपरिगण ! । कुः- भूमिस्तस्या रक्षकत्वात्, अः-कृष्णः, तस्याऽऽ मन्त्रणं हे क्व ! । पटुः क-आत्मा यस्य स तस्याऽऽमन्त्रणे हे पटुक ! । इः- कामस्तत्र यो-यमः विध्वंसकत्वात्, तस्याऽऽमन्त्रणं हे इय !। हे कः- हे ब्रह्मन् ! त्वं औत्सुक्यात् आम-आगच्छ । 'अम दुम गतौ' आङ्पूर्वकः । त्वि (त्वं) किं कुर्वन् ?, यन्-विहरन् । त्वं किंविशिष्टः ?, कु-कुत्सिता अमा-रोगाः, कम्पः-खेदः, श्रमो-मूर्च्छेत्यादयः यस्मात् स क्वमः । ईदृशः इः-कामः तस्य घो-हननं यस्य सः क्वमेघः, "घः कुम्भे हनने" इति **सुधाकलशात्** । पुनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किंविशिष्टः ?, गुह्यानां-रहस्यानां आलोचनादौ प्रोक्तानां कः-मित्रं स गुह्यकः । सन्देशार्थाः किंविशिष्टाः ?, अः-कृष्णः कैः-रणैः -सङ्ग्रामैः । किंविशिष्टैः ?, प्राणिभिः-प्र-प्रकृष्टः आणः-शब्दो येषां ते प्राणा-निस्वानादयः, ते सन्त्येषु ते प्राणिनः, तैः प्राणिभिः । पुनः किंवि०?, प्र-प्रकृष्टा आपणा-हट्टा येषां ते प्रापणाः-वणिजः, ते सन्त्यस्य स प्रापणी । पुनः किंवि० ?, अर्त्ताहिप्रकृतिकृपणाः अहिवत्-भुजगवत् क्रूरत्वात् प्रकृतिः-स्वभावो येषां ते अहिप्रकृतयः वैरिणः । अर्त्ता-पीडिता अहिप्रकृतयो येन स अर्त्ताहिप्रकृतिः । तथा कृपणान्-मितम्पचान् अस्यति-क्षिपति दानाधिक्यात् इति कृपणाः ततः कर्मधारयः । च पुनरर्थे । पुनः किंवि० ?, इतो ज्ञातश्चासौ ना नरश्च स इतना-प्रसिद्धनरः । केषु ?, चेतनेषु-प्राणिषु ॥५॥

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गताऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥६॥

व्याख्या- जातमित्यादि । पुष्करस्य-पद्मस्य पाणि-पादादौ आवर्त्तो यस्य स तस्याऽऽमन्त्रणं हे पुष्करावर्त्त !। हे दूर ! हे विप्रकृष्ट ! कुतः ?, विधिवशात्, विधि-विधाता, तस्य यो वशः, तस्मात्, स्वयं सकलकृत्यकर्तृत्वात् । याच्ञा-मार्गणं तत्र अमोघः-सफलः तस्याऽऽमन्त्रणं हे याच्ञामोघ !। हे लब्धकाम ! लब्धाः-प्राप्ताः कामाः उपलक्षणत्वाद्भोगा येन स लब्धकामः तस्य सम्बोध० । अ इत्यामन्त्रणे । "एते चतुर्दशाऽपि पादपूरणभर्त्सनामन्त्रणनिषेधेष्विति" **बृहन्न्यास**प्रामाण्यात् । अथवा लब्धाः-प्राप्ताः कामाः-शब्दादयः तैः अः-कृष्णतुल्यः तस्य सम्बोध० हे लब्धकामा !। हे श्रीनरेन्द्र ! त्वां अहं ईदृशं जानामि । किंविशिष्टं ?, जातं-उत्पन्नं । कस्मिन् ?, वंशे । किंविशिष्टे ?, भुवनविदिते । त्वां पुनः किंवि० ?, प्रकृतिपुरुषं-प्रकृतीनां पौरामात्यादीनां पुरुष-आत्मा तम् । "पुरुषस्त्वात्मनि नरे" **इत्यनेकार्थ**वचनात् । पुनः किं०?, कामरूपं कामवत्-कन्दर्पवत् रूपं यस्य स तं तथैव । अहं किंवि० ?, बन्धुः-भ्राता रक्षकत्वात् । केषां ?, कानां वह्नि-वायु-वारीणाम् । इत्यनेन कवेः साधुत्वं वर्णितम् । साधुभिश्च वर्णितः पुरुषः उत्तमः स्यान्न चेतरैः । यदुक्तं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"साधवो यं प्रशंसन्ति तमाहुः पुरुषोत्तममित्यादि ॥" तथा-
"चारणा यं प्रशंसन्ति यं प्रशंसन्ति मद्यपाः ।
बन्धुक्यो यं प्रशंसन्ति तमाहुः पुरुषाधमम् ॥" इति ।
कः सूर्यमित्रवास्व(य्व?)ग्निब्रह्मात्मयमकेकिषु ।
प्रकाशवक्रयोश्चापि कं तीरसुखमूर्द्धसु ॥ इति **सुधाकलशः** । तेन हेतुना त्वयि-त्वद्विषये मघोनः-इन्द्रस्य अर्थित्वं-याचकवृत्तित्वं अस्ति । अर्थित्वं किम्भूम ?, गतो-नष्टः ऊहो-विचारो यत्र तत् गतोहं-निर्विचारमित्यर्थः । पुनः किम्भूतं ? अवरं-अश्रेष्ठं । त्वयि किम्भूते ? अधिगुणे-प्राप्तगुणे, नाधमे-नकारस्य निषेधार्थत्वात् अगर्हणीये इत्यर्थः । "अधमो न्यूनगर्ह्ययो"रि**त्यनेकार्थः** ॥६॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्यो ते वसतिरलकानामयक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥

व्याख्या-सन्तप्तानामित्यादि । असिना-कृपाणेन शः-श्रेष्ठः । "शं श्रेयसि सुखेऽव्ययः" । तस्य सम्बोधनं हे असिश !। अथवा 'शसयोरैक्यात्' असौ-सा-लक्ष्मीर्यस्य सः, तस्य सम्बोधनं असिश !। सन्तप्तानां-दुःखाग्निप्रोषितानां हे पयोद !-हे जलदतुल्य !। सं-शोभनं ददाति, तस्य सम्बो० हे सन्द !-हे प्रिय !। कस्य ? मे-मम । आमा-रोगा न सन्त्यस्य स, तस्य सं० हे अनाम ! - हे यक्ष ! - हे धनद ! दानशौण्डत्वात् । "आ विधातरि मन्मथे" इति **महीप**वाक्यात् आ-मन्मथः तस्य, रम्यत्वात् उद्यानं क्रीडास्थानं तस्य सम्बो० हे ओद्यान ! । स्थितः-गतिनिवृत्तिं प्राप्तो हरः शम्भुर्यत्र तत् स्थितहरं ईदृशं शिरो-मस्तकं यस्य सः, तस्य सम्बो० हे स्थितहरशिरः !। तथा चन्द्रिकया धौतानि-क्षालितानि हर्म्याणि यस्य सः, तस्य सम्बो०। अथवा, "चन्द्रोऽम्बुकाम्ययोः स्वर्णे सुधांशौ कर्पूरे" **इत्यनेकार्थ**वाक्यात् चन्द्रः-स्वर्णमस्त्येषु तानि चन्द्रीणि-स्वर्णवन्ति ईदृशानि । तथा कः-प्रकाशः तेन आ-समन्तात् धौतानि हर्म्याणि-धवलगृहाणि यस्य सः, तस्य सम्बो० हे चन्द्रिकाधौतहर्म्य !। अ इति सम्बोधनो(ने) । त्वं रणं-शब्दं हर-अपनय । कस्य ? धनं-द्रव्यं तस्य पति-र्गमनं यस्मात् स धनपतिः, ईदृशो यः क्रोधः स एव विश्लेषी-विश्लेषितवान् यः तः-तस्करः सः, तस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य । किम्भूतं रणं ?, इं-बुद्धिं श्यति-तनूकरोतीति इशः तम् । ईं-लक्ष्मीं वा श्यतीति ईशः तं ईशम् । किम्भूतस्त्वं ?, 'बवयोरैक्यात्' वाहा-अश्वाः सन्त्यस्य स वाही । तथा अयेन-शुभदैवेन, अः-कृष्णः स अयाः तस्य सम्बो० हे अया ! - शुभभाग्येन हे कृष्णतुल्य ! । हे नरेन्द्र ! इभ्यानां ईश्वराणां ते तव वसतिः-राजधानी गन्तव्या-गमनार्हा । कोऽर्थः ? यो नृपः क्रोधतस्करं निवारयति तस्याऽऽस्थानं गन्तव्यमिति भावः । कथम्भूता वसतिः ? अलका-ऋद्धिबाहुल्यादलकापुरीसदृशीत्यर्थः ॥७॥

अथ कश्चिन्निमित्तज्ञो नरेन्द्रं ब्रूते-

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ।
कः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥

व्याख्या - त्वामारूढमित्यादि । हे प !- हे रक्षक ! "पस्तु पातरी"ति वाक्यात् । वः पुनरर्थे । हे न ! - हे पूज्य ! "नकारो जिनपूज(ज्य)योरिति **विश्वलोचने** । अथवा पानि-प्रौढानि वनानि-गृहाणि गृहस्थत्वात् यस्य सः, तस्य सं० हे पवन ! । "वनं प्रश्रवणे गेहे प्रवासेऽम्भसि कानने" **इत्यनेकार्थः** । उत्-प्राबल्येन गृहीत-आत्तः अलकायाः अन्तः-सीमा येन सः, तस्य सं० हे उद्गृहीतालकान्त ! । हे अविरह ! - हे विरहरहित ! त्वां प्रति आः-लक्ष्म्यः प्रेक्षिष्यन्ते-गजतुरगादिकाः विलोकयिष्यन्ति; कुतः? अयात्-शुभदैवात् आशु-शीघ्रम् । त्वां किम्भूतं?, पदवीं-राजपदवीं आरूढं प्राप्तं, आः किम्भूताः ?, केन-ब्रह्मणा वनिताः-याचिताः ताः कवनिताः ।

"वनितं तु स्यात्प्रार्थिते सेवितेऽपि च ।

वनितोत्पादितात्यर्थं रागनार्यपि नार्यपि ॥" **इत्यनेकार्थः** । पुनः किम्भूतं त्वां ?, अहं-न हन्तीत्यहः । तं अहं-दयालुं ज्ञात्वेति भावः । आः किं कुर्वन्त्यः इति ?, असन्त्यः-'असी गत्यादानयोः', गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात् इति जानन्त्यः । इत्यव्ययोऽध्याहार्यः । किमित्याह-त्वयि संनद्धे सति कोऽपि-ब्रह्माऽपि जायां-भार्यां उपेक्षेत । किम्भूताम् ?, विधुः- चन्द्रस्तद्वद्राजते इति डप्रत्यये विधुरा तां विधुरां । तथा इत्थं यः-यमोऽपि 'शसयोरैक्यात्' नश्यात्-नश्यतु इत्यर्थः । कथं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इव ? यथा अन्यो जनः पराधीनवृत्तिः-परवशः सन् त्वयि संनद्धे नश्यति तथा यमोऽपीत्यर्थः । तथा आः किम्भूताः ? "नानुस्वारविसर्गौ च चित्रभङ्गाय सम्मतौ" इति वाक्यात् सत्यः-शोभनाः । अनुस्वाराभावात् इत्यपि व्याख्येयम् ॥८॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगर्वः ।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥९॥

व्याख्या - मन्दं मन्दमित्यादि । "गर्भः कुक्षौ शिसौत्सन्धौ (शिशौ सन्धौ) भ्रूणे पनसकण्टके मध्येऽग्नाऽपवरके" । इत्**यनेकार्थ**वाक्यात् गर्भः- सन्धिः तस्याऽऽधानं-निष्पादनं षड्गुणोपेतत्वाद् यस्य सः, तस्य सं० हे गर्भाधान ! । पे-पथि वाति-गच्छति तस्य सं० हे पव ! । हे नः !- हे नर ! अः-कृष्णस्तद्वत् । "यो वातयशसोः पुंसी"ति **विश्वलोचन**वचनात् यो-यशो यस्य स अयः, तस्य सम्बो० हे अय ! । "थो भवेद् भयरक्षणे" इति वचनात् थो-भयरक्षणं, तत्र अः-कृष्णतुल्यः तस्य सं० हे थाः ! । अथवा न यः अयः, अयः-अयशः, तस्य थो-भयरक्षकः तस्य सम्बोधनं हे अयथ ! । अ इति सम्बोधने । ते तव सः, गर्वोऽहङ्कारः । त्वां मधुरं शिवधुरं नदति, "मश्चन्द्रे विधौ शिवे " इति वाक्यात्, मः-शिवः तद्वत् धूः-धूर्वी यस्य स तं मधुरम् । कोऽर्थः ? तव गर्वः त्वां शिवं सकलकृत्यकर्तृत्वात् वक्तीति भावः । किम्भूतः गर्वः ?, अनुकूलः-आत्महित-कारकः । पुनः किम्भूतः ?, वामः-प्रशस्तः स्वप्रतिज्ञानिर्वाहकत्वात् । स क इत्याह- 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' यो-गर्वः मन्दं-अलसमपि नरं तु(नु)दति अशक्यवस्तुविधाने प्रेरयति । तथा च पुनः मन्दं-मूर्खमपि नुदति, अपीत्यध्याहार्यम् । तव गर्वः पुनः किम्भूतः ? "चश्चन्द्रचकोरयो"रि**त्येकाक्षर**वाक्यात् चवच्चन्द्रवत् अतति-निर्मलत्वात् सततं गच्छति स चातः, ईदृशः कः-आत्मा यस्य स चातकः । चः पुनरर्थे । नये-न्याये नो-बुद्धिर्यस्य - "नो बुद्धौ ज्ञानबन्धयो"रिति **सुधाकलशात्**, सः,तस्य सम्बोधनं हे नयन ! । त्वां बलाकाः-राजानः-स्त्रियो वा सेविष्यन्ते - आश्रयिष्यन्ति । कुतः ? क्षणपरिचयात् । बलेन कटकेन अकन्ति-कुटिलं गच्छन्ति ते बलाका-नृपा इत्यर्थः । बलेन-रूपेण वाऽकन्तीति बलाकाः-स्त्रियः । ततश्च किम्भूताः ? आबद्धा-रचिता माला पुष्पादिदामपङ्क्तिर्वा यैर्याभिश्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आबद्धमाला: । अथवा आ-ब्रह्मा तेन बद्धं-निबद्धं मालं- कपटं यासु ता: तथैव । क्षण:-नाडिकाषष्ठो भाग:, तस्य य: परिचय: तस्मात्, बहुपरिचये किं पुन:?। त्वां किम्भूतं ? सुभगं-सर्वजनेष्टम् । पुन: किंविशिष्टं ? खानि-सुखानि, तथा इभा:-गजा:, खानि च इभाश्च खेभा: । ते सन्त्यस्य स खेभवान् तं खेभवन्तं नूनं-निश्चितम् ।।९।।

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्ध: कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्य: पाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।।१०।।

व्याख्या - तां चाऽवश्यमित्यादि । दिवं-स्वर्ग: तद्वत् सा-लक्ष्मी: मणिस्वर्णादिरूपा यस्य स: तस्य सं० हे दिवस ! । एकपत्नी-सुचरित्रा स्त्री सैव मा-जननी यस्य; "मा मातरि तथा लक्ष्म्या"मिति वाक्यात्; स:, तस्य सम्बो० हे एकपत्नीम !। भ्रातृजानां-भ्रातृपुत्राणां कुटुम्बपोषकत्वात् आयो-लाभो यस्मात् स:, तस्य सम्बो० हे भ्रातृजाय ! । प्रगतं अयश:-अकीर्तिर्यस्मात् स:, तस्य सम्बो० प्रायश: !। प्रणयि-प्रेमयुक्तं हृत्-हृदयं यस्य स:, तस्य सम्बोधनं क्रियते हे प्रणयिहृत् !। तां आं-लक्ष्मी: त्वं अवश्यं द्रक्ष्यसि, आं किम्भूतां ?, परां प्रकृष्टां, त्वं किंविशिष्ट: ?, विगतो ह:-हस्तो येषां ते विहा:, ईदृशा ये ता:-तस्करास्तेषां गति:-पलायनं यस्मात् स: विहतगति: । पुन: किम्भूत: ?, आशा-दिशस्तासां बन्धो यस्मात् स:, अथवा आशा-याचकानां धनप्राप्तिरूपा वाञ्छा तस्या बन्धो यस्मिन् स: आशाबन्ध: । पुनस्त्वं किम्भूत: ?, गणना-गणवत्-प्रमथवत् ना-नर अत एव लोकोक्त्या त्वं ईश्वरस्य निजभक्त इति सिद्ध: । तां कामित्याह- 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' या लक्ष्मी: । व्यापद्-विपत्ति: तस्या नाम-अभिधां रुणद्धि । क्व सति ? विप्रयोगे - वि-विशिष्ट: प्रयोग:-प्रयुक्ति: दानधर्म्मादिकृत्यं, वि-विशिष्टं विविधं वा प्राति-पूरयतीति विप्रो-धर्म्म: । तस्य योगे सति या विपत्तिनाम आवृणोति-व्यापन्नाम । किम्भूतं ?, अङ्गनानां-स्त्रीणां कुसुमसदृशं गर्हणीयत्वात्- पुष्पतुल्यमित्यर्थ: । ननु "वाक्यान्तरप्रवेशेन विच्छिन्नं खण्डितं मतं"-इति **वाग्भटालङ्कार**वचनादनुचितमिहेदम् । नैवम् । **अलङ्कारचूडामणौ** "क्वचिद् गुणोऽपीति" भणनात् वाक्यान्तरप्रवेशेऽपि नाऽत्र दोष: । एवं अग्रेऽपि चिन्त्यं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थभूयस्त्वभयान्नात्र लिख्यते । अहं हेतुः । चकारः पुनरर्थे । या-लक्ष्मीः अयं-शुभदैवं पाति तत् तस्मात् हेतोः त्वं आं द्रक्ष(क्ष्य)सि इत्यपि व्याख्येयम् । सत्-साधु यथा स्यात् तथा ॥१०॥

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां,
तुच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ।
आकैलाशाद्बिसकिशलयच्छेदपाथेयवन्तः,
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥११॥

व्याख्या-कर्तुमित्यादि । उत्-ऊर्ध्वं-शिरसि शिलि(लीं)न्ध्रोऽहिच्छत्रस्तदाकृतिवत् आतपत्रं-छत्रं यस्य सः, तस्य सम्बो० हे उच्छिलि(ली)न्ध्रातपत्र ! । अः-कृष्णस्तद्वत् पराक्रमादिना श्रवणं-श्रुतिर्यस्य सः, तस्य सम्बो० हे अश्रवण !। यद्भवान् "महावुत्सवतेजसी"**त्यनेकार्थ**वचनात् महो यस्यास्तीति मही-तेजस्वी सन्, "गर्जितो मत्तकुञ्जरे, गर्जितं जलदध्वाने" **इत्यनेकार्थ**वचनात् गर्जितं-उन्मत्तकुञ्जरं-सुभगं स्ववशत्वात्-सुन्दरं अथवा 'शसयोरैक्यात्' शुभं गच्छतीति शुभगं-शुभगतिकारकं उन्मत्तगतिनिषेधात् कर्तुं-विधातुं प्रभवति-समर्थो भवति, कोऽर्थः ? मत्तमतङ्गजोऽपि स्वबलेन वशीकर्तुं शक्यते इत्याशयः । तत्-तस्मात् हेतोः ते-तव आं-लक्ष्मीं ईदृशीं श्रुत्वा-आकर्ण्य । कीदृशीमित्याह-अः-कृष्णस्तस्येयं अणि सा ई, तां ईं-कृष्णसम्बन्धिनीमित्यर्थः । "नभं तु नभसा साक"मिति **शब्दप्रभेद**वाक्यात् नभे-आकाशे सीदन्ति-गच्छन्ति डप्रत्यये नभः(नभसः) सत्त्वात् नभसा-देवाः, ते सन्त्यस्य स नभसी-देवतायुक्तः, स चासौ भवांश्च नभसिभवान्, तस्मात् नभसिभवतः-देवतायुक्तात् भवतः । राजहंसाः-राजश्रेष्ठाः प्रधाना-राजानः ईदृशाः सम्पत्स्यन्ते । कीदृशाः ?, इत्याह-पाथेयवन्तः-सम्बलयुक्ताः । तथा सहः-समर्थः अयः-शुभदैवं येषां ते सहायाः । अथवा हयानां समूहो हायं, तेन सह विद्यन्ते ते सहायाः-अश्वसमूहयुक्ता इत्यर्थः । भवतः किम्भूतात् ?, आ-लक्ष्मीः तस्यां कैलाशः तस्मात् आकैलाशात् । अथवा कैलासं(शं)यावत् अतति सः, तस्य सम्बोधनं हे आकैलाशात् !। विशिष्टा सा लक्ष्मीर्यस्य सः, तस्य सम्बो० हे बिस ! । किशलयवत्-मृणालवत् छा-निर्मला ईः-लक्ष्मीः, तथा दं-कलत्रं-दानं वा यस्य सः, तस्य सम्बो० हे किशलयच्छेद !। किशलयवत्-नवपल्लववत् तरुणत्वात् छा-निर्मला ईः-देहशोभा येषां तानि ईनि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानि-कलत्राणि यस्य सः, तस्य सं० तथैव । अथवा भवतः--तव नभसि-व्योमनि राजहंसाः-राजानः श्रीशशाङ्काः, तथा हंसाः-श्रीसूर्य्याः, सहायाः सम्पत्स्यन्ते । पाथेयं-प्राचीनाचीर्णपुण्यरूपं तद्वन्तः-पाथेयवन्तः । पूज्यत्वाद्बहुत्वनिर्देशः । मानसे उत्-प्रधानं कं-सुखं आधिरहितत्वात् येषां ते मानसोत्काः । इदं कर्तृविशेषणम् ॥११॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यै[ः]पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥१२॥

व्याख्या-आपृच्छस्वेत्यादि । आ इत्यामन्त्रणे । सु-सुष्टु आ-गजतुरगादिरूपा लक्ष्मीर्यस्य सः, तस्य सं० हे स्व !। अथवा हे स्व !-आत्मीय ! हे प्रिय ! - गुरुविनयविधायकत्वात् मे-मम हे वल्लभ !। रघुपतिवत् पाति-रक्षतीति [रघुपतिपः]तस्य सं० हे रघुपति[प]!। हे अखल !-निष्पाप ! । "खलं कल्के भुवः स्थाने क्रूरे कर्णेजपे अधमे" **इत्यनेकार्थ**वचनात् हे अखल !-अक्रूर ! त्वं अमुं-श्रीगुरुं आलिङ्ग्य शैलं पृच्छ,-शीलं-साधुवृत्तं तस्य समूहः शैलं, तस्य कति भेदाः इत्यादिविचारस्य पृच्छां कुरु इत्यर्थः । अमुं किम्भूतं ?, दैः-दानैः अभय-सुपात्रादिभिः अङ्कितं लक्षितम् । 'शसयोरैक्यात्' आसु-शीघ्रम् । अमुं कं ?, इत्याह-यस्य गुरोः सं-शोभनं योगं-अलब्धलाभं बोधिबीजरूपं इति 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' ज्ञात्वा भवति-त्वद्विषये स्नेहव्यक्तिर्भवति, कोऽर्थः? अत्र स्नेहाविष्करणे मम लाभोऽस्तीति ज्ञात्वा यस्य स्नेहाविष्करणमतिभावः भवति । किम्भूते ?, अकाले-अ कृष्णवर्णे गैं(गौ)रवर्णत्वात् । पुनः किं० ?, काले-कृतान्तरूपे वैरिणां, अथवा काले प्रस्तावे सति यस्य स्नेहव्यक्तिर्भवति-निष्कारणं न स्यादित्यर्थः इत्यपि ज्ञेयम् । तस्य किं कुर्वतः ?, मुञ्चतः, कं ? बाष्पं-दाहं, कस्य ?, भवः-संसारः तस्य, भवतः-संसारस्य । सार्वविभक्तिकः तस् । तस्मादिह षष्ठी ज्ञेया । बाष्पं किम्भूतं ?, उष्णं दुःसहत्वात् । पुनः किम्भूतं ?, चिरं विरहं जनयतीति डप्रत्यये चिरविरहजम् ॥१२॥

मार्गं तावत् श्रृणु कथयतस्त्वत्प्रय(या)णानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद ! श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्ताऽसि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः श्रोतसां चोपयुज्य ॥१३॥

व्याख्या- मार्गमित्यादि । मां-लक्ष्मीं इता-प्राप्ताः ये दनुजाः-दानवाः । ल-इन्द्रः तद्वत् दो-दानं यस्य सः । अथवा "दो दातृदानयो"रिति **सुधाकलशात्** । तद्वत् दो-दाता सः, तस्य सं० हे मेतदनुजलद ! । सं०शोभनं दं-कलत्रं यस्य तस्य सम्बोधनं हे सन्द ! । "श्रोत्रपे कर्णमार्गे पः पाने पवने पथि" इति **सुधाकलशः** । त्वं यं गुरुं श्रोष्यति 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्'। तु-पुनः तस्य-श्रीगुरोः तावत् आदौ मार्गं-धर्म्माचरणरूपं श्रृणु । गुरुं किं० ?, ईशं - इः-कामस्तस्य विनाशे ईशं-रुद्रप्रायं, । मार्गं किम्भूतं ?, अतन्ती[ति]क्विपि अतः-आत्मानः, तेषां प्रयाणानुरूपं-गमनयोग्यं । पुनः किं० ? शिखरिषु पदं-वृक्षेषु श्रेष्ठं कल्पवृक्षं ई(इ)ष्टार्थपूरणात् । किं कुर्वतः गुरोः ?, कथयतः-प्ररूपयतः धर्माधर्मस्वरूपमिति शेषः । परि-सामस्त्यो(स्त्ये)न लघून्-अद्युम्नादिना ह्रस्वान् प(पा)ति-रक्षति तस्य सं० हे परिलघुप ! । तु पुनरर्थे । यत्र-गुरौ यो-यमोऽपि खिन्नः खिन्नः तथा क्षीणः क्षीणश्च भवति । गुरौ किम्भूते ?, श्रोतसां-इन्द्रियाणां उपयुजि-गृहीतरि-निग्रहकर्तरि इत्यर्थः । अ इति सम्बोधने । नितरां असौ-खड्गे आ-लक्ष्मीर्यस्य सः, तस्य सं० हे न्यस्य !- नरेन्द्र ! त्वं गन्ताऽसि-, 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' ज्ञाता वर्त्तसे । स्वयमेव विज्ञोऽसि तर्हि मयाऽस्य गुरोः किं स्वरूपं निरूप्यते इति भावः ॥१३॥

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धां श(?)ताभिः (?) (द्धाङ्गनाभिः?) ।
अस्मात्स्थानात् सरसनिचुलादुत्पतोदे(द)ङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥

व्याख्या - अद्रेरित्यादि । अङ्ग इत्यमन्त्रणे । हे मुग्ध ! - हे रम्य ! हे सिद्ध ! - प्रतिष्ठाप्राप्तः (स!), हे स्थूलहस्त !- हे बृहत्कर ! दानादिशुभ-कृत्यकरणादित्यर्थः । खं-सुखं यथा स्यात् तथा । पथि-मार्गे । उत्प्राबल्ये तप(पत)गच्छ(च्छ)त्वं । किं कुर्वन् ? परिहरन्-निवारयन् । कान् ?, अवलेपान्-मदान्, बहुत्वनिर्देशात् अष्टाऽपि ज्ञेयाः । केषां ? दिशः-प्राच्यादिकाः चतस्रः, नागाः-हस्तिनः ते दिग्नागाः तेषाम् । नागशब्दग्रहणेन "**ध्वजान्तो धर्म्मः गजान्ता**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मीः" इति वचनात् सर्वाऽपि लक्ष्मीर्ज्ञेया । पुनः किं० ?, उदङ्मुखः- स्वे(श्वे)तवस्त्रपरिधानादौ अथवा उद्वट्वत्-उत्तरवत् । शुभकार्यादौ शुभमुखः श्रेष्ठः । यथोत्तरा दिग् शुभकार्यादौ मन्यते तथा त्वमपीत्यर्थः । पुनस्वं (स्त्वं ?) इति हेतोः, ईभिः-लक्ष्मीभिः खं-सुखं यथा स्यात्तथा उन्मुखी-ऊर्ध्वमुखवान् दृष्टः इति-अस्मात् हेतोः । कुतः इत्याह-असौ-नरेन्द्रः अद्रेः-सूर्यस्य शृङ्गं-प्रभुत्वं-उत्कर्षं वा हरति-स्वप्रतापाधिक्यादयहरां(दपहर ?)तीत्यर्थः । शृङ्गं किंवि० ?, चकिताः-भीताः चः-चन्द्रः-चकोरा वा । तथा कः-सूर्यः तस्याऽपत्यं किः-यमः अर्कसूतत्वात्, शनिर्वा । तथा ताः-तस्कराः यस्मात् तत् चकितचकितम् । किंभूतः त्वं ?, सरसः-शृङ्गारयुक्तः निचुलः-निचोलो यासां ताः सरसनिचुलाः, विशेषणसामर्थ्यात् स्त्रियः ।, ताः प्रति अतति-सततं गच्छति सम्भोगवशेन सः सरसनिचुलात् । पुनः किम्भूतः ?, 'शसयोरैक्यात्' अस्मानि-गिरिशिलाः तानि अदन्ति ते अस्मादः - खलशिलाकणभोजनत्वात् पारापताः, तेषां स्थानं अतति-गच्छति सः अश्मात् । स्थानात् त्वम् पुनः किंवि० ?, पुनः-पवनः पवित्रः । पुनः किंवि० ?, सु-शोभनं एति-गच्छतीति क्विपि स्वित् । प्रभुत्वं किम्भूतं ? अत्साहं-अद्भ्यः प्राणिभ्यः अर्थात् प्रजाभ्यः सां लक्ष्मीं न हरति इति ड प्रत्ययेऽत्साहं, किमित्याश्चर्ये ॥१४॥

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्
वल्मीकाग्रात्प्रभवति घ(ध)नुःखण्डमाखण्डलस्य ।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥१५॥

व्याख्या - रत्नच्छायेत्यादि । रत्नवत्-मणिवत्, अथवा रत्नेभ्यः छाया-शोभा यस्य सः, तस्य सम्बोधनं हे रत्नच्छाय ! । वल्मीकनामा महामुनिः तद्वत् अग्राः-प्रधानाः ते वाल्मीकाग्राः-श्रीगुरवः । त एव अत्-आत्मा यस्य सः, तस्य सं० हे वाल्मीकाग्रात् ! । ते-तव करे-हस्ते तत् धनुः-कोदण्डं प्रभवति । धनुः किम्भूतं ?, अति- "तकारस्तस्करे युद्ध" इति वचनात् तः-तस्करः, तस्याऽपत्यं तिः, न विद्यते तिः-तस्करपुत्रो यस्मात् तत् अति । अत एव धनुः किंवि० ?, अवत्येवं शीलं आवि-रक्षणशीलम् । कस्याः ?, पुरः-नगर्याः । कुतः ?, तात्-तस्करात् । "तः तस्करे क्रोडपुच्छयो"रिति वाक्यात् । यद्वा तात् किम्भूतात् ?,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वल्मीको-रोगविशेषः तस्मात् अग्रात्-अधिकात् दुःखदातृत्वात् । धनुः किं० ?, श्यामं विचित्रवर्णत्वात् कुत्रचित्प्रदेशे श्यामम् । पुनः धनुः किं०?, इवप्रेक्ष्यं-[इः]-कामस्तस्य वप्रः-तातः-श्रीकृष्णः तस्य ईक्ष्यं-दर्शनीयं मनोहरत्वात् । तव किम्भूतस्य ?, खण्डमाखण्डलस्य-खण्डानां-त्रिसङ्ख्याकानां नवखण्डानां वा मा-लक्ष्मी[:]तया आखण्डलः-इन्द्रः स तथैव । पुनः किम्भूतस्य ?, गोपवेषस्य-गोपो-भूपतिः तस्य वेषो यस्य स तथैव । पुनः किंवि० ?, विष्णोः-कृष्णस्य दुष्टशत्रुनिकृन्तनात् । तत्किमित्याह- येन धनुषा भवान् 'पुरत् अग्रेसरत्वे' इति वचनात् पुरतितरां-अतिशयेन अग्रेसरत्वं भजतीत्यर्थः । केनेव ? बर्हेणेव-परिवारेणेव । वः पुनरर्थे येन भवान् कान्ति-शोभां आ[प]त्स्यते, किम्भूतेन ? स्फुरितरुचिना-स्फुरितरोचिषा ॥१५॥

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्यमालं
किञ्चित्पश्चाद् व्रजलघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥१६॥

व्याख्या-त्वया(य्या)यत्तमित्यादि । भ्रुवोर्विकारः-विकृतिः तत्राऽनभिज्ञः-तदविधानात् अचतुरः, तस्य सम्बो० हे भ्रूविकारानभिज्ञ ! । अमालं-निष्कपटं यथा स्यात्तथा, त्वं क्षेत्रं-कलत्रं ईदृशं व्रज-जानीहि 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' । केन ?, उत्तरेण अर्थाद् गुरूणाम् क्षेत्रं कीदृशं ?, 'शसयोरै० रलयोरैक्याच्च' सीरं-शीलं ब्रह्मचर्यं तस्य उत्कषणो-हिंसनः सुरभिर्गन्धो यस्य तत् तथैव । स्त्रीणां स्पर्शः शीलं नाशयतीति भावः । पुनः किम्भूतं ?, त्वयि कृषिवत् फलतीति तत् कृषिफलं । त्वयि किम्भूते ? एति-गच्छति 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' जानातीति इत्, तस्मिन् इति-तत्त्वातत्त्वविचारके इत्यर्थः । पुनः किं० त्वयि ?, आरुहि-कन्दर्पे, आ लक्ष्मी[:]तस्यां, 'रुहं जन्मनी'ति वचनात्- रुहति (रोहति) सः क्विपि स आरुट् तस्मिन् आरुहि । कोऽर्थः ? । त्वं कन्दर्पः रूपवत्त्वात् इति अस्मात् हेतोः । त्वयि क्षेत्रं अधीनं इत्यपि व्याख्येयम् । त्वं किम्भूतः ?, वधूलोचनैः पीयमानः कामादपि अधिकरूप[व]त्त्वात् । लोचनैः किम्भूतैः ? प्रीत्या-स्नेहेन स्निग्धैः मित्रैः मित्रतुल्यैरित्यर्थः । पुनस्त्वं किं० ?, सती-शोभना या-लक्ष्मीर्यस्य स सद्यः । कुतः ?, चात्-चन्द्रात्, सुश्रीकत्वात् चन्द्रादधिक इत्यर्थः । पुनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं० ?, चिद्-बुद्धिः तया पाति-रक्षतीति चित्पः । पुनः किं० ?, लघु-शीघ्रं गतिः-ज्ञानं यस्य सः, अथवा लघूनां-बालानां गतिः-मार्गो वा यः । यतः,

"दुर्बलानामनाथानां बालवृद्धतपस्विनाम् ।
पिशुनैः परिभूतानां सर्वेषां पार्थिवो गतिः ॥"

इति वचनात् सः लघुगतिः । पुनः किं० ?, भूः-भूमिः तस्याः सकाशात् या-लक्ष्मीर्यस्य सः भूयः । किमिति वितर्के । एव-निश्चितम् । अथवा ए इत्यामन्त्रणे, वेषु-ज्ञानेषु उत्तरं-श्रेष्ठं स्वपरहितत्वात् श्रुतं तेन वोत्तरेण । श्रुतज्ञानेन त्वं क्षेत्रं व्रजेत्यपि व्याख्येयम् । हे जन[प] ! हे जनरक्षक !, हे द !- हे दायक ! ॥१६॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥

व्याख्या-त्वामासारेत्यादि । आ-लक्ष्मीः तया सार[ः]-श्रेष्ठः । आ-समन्तात् सारं-बलं यस्य वा सः । तस्य सं० हे आसार ! । सा-लक्ष्मीः तस्याः अनुमानं यस्मात् सः, तस्य [सं०]हे सानुमान !। त्वं, आम्रवत्-सहकारवत् कूटं माया यस्मिन् सः आम्रकूटः-शत्रुः अन्तःकूटत्वात् । सहकारे हि मायित्वं स्यात् । यतः-

"अन्तर्वहसि कषायं, बाह्याकारेण मधुरतां यासि ।
सहकारविटपि मायिन् !, युक्तं लोकैर्बहिः क्षिप्तः ॥"

इति वचनात् आम्रे अन्तःकषायित्वं बहिर्मधुरतादिलक्षणं कूटं स्यात् । ततोऽस्योपमा शत्रोरिति आम्रकूटः-शत्रुः त्वां मूर्ध्ना-शिरसा वक्ष्यति-धारयिष्यति । साधु यथा स्यात्तथा । त्वां किम्भूतं ?, अध्वश्रमं मार्गश्रमं परिगच्छन्ति-डप्रत्यये अध्वश्रमपरिगाः ईदृशाः ताः-तस्कराः यस्मात् सः, तं अध्वश्रमपरिगतं । पुनः किम्भूतं ?, प्रशमितवनोपप्लवं-प्रशस्तं शं-सुखं यस्य सः-तं प्रशं त्वां । पुनः किंवि० ? इतं-प्राप्तं, "वनं प्रश्रवणे गेहे प्रवासेऽम्भसि कानन"**इत्यनेकार्थ**वचनात्; वनं-प्रवासो येन स इतवनः । ईदशः उपप्लवः-उपद्रवो यस्मात् स इतवनोपप्लवः । अथवा प्रशं-प्रशस्तसुखाय इतं-प्राप्तं वनं ननु (न तु)धन-सहजादिभवनं येन सः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशमितवनः । ईदृशः उपप्लवो-राहुर्यस्य सः, तम् । तथा उच्चैः नक्षुद्रः-अक्षुद्रः, सज्जनोऽपि त्वां मूर्ध्ना वक्ष्यति । तथा पुनः हे अक्षय ! सदोदयत्वात्, आं-श्रियं संश्रयते इति आसंश्रयः, ईदृशः अयः-शुभदैवं यस्य सः, तस्य सं० हे आसंश्रयाय ! भवति-त्वयि-त्वत्समीपे मित्रे-सहचरे प्राप्ते सति यः-यमोऽपि उच्चैः विमुखः-पराङ्मुखः-विगतवक्त्रो वा किं न स्यात् ? अपि तु स्यादेवेत्यर्थः । यः किम्भूतः?, क्षुद्रः-तुच्छः । त्वयि किम्भूते ?, प्रथमसुकृतानि-प्राग्भवार्जितपुण्यानि आप्नोति स प्रथमसुकृतापः, तस्मिन् प्रथमसुकृतापे ॥१७॥

[1]अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं, सानुमानाम्रकूटः
तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा [2]धारयिष्यत्यवश्यम् ।
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदा[3]थमग्निं
सद्भावार्द्रः फलति नि(न)चिरेणोपकारो महत्सु ॥१८॥

व्याख्या-अध्वक्लान्तमित्यादि । सा-लक्ष्मीः, नुः-स्तुतिः, ज(त)योर्मानो-गृहं, "मानश्चित्तोन्नतौ गृहे" इत्**यनेकार्थः** । सः, तस्य सं० हे सानुमान ! । तुङ्गानां-उन्नतानां इनः-स्वामी, तस्य सं० हे तुङ्गेन ! । हे ज !- वैरिजेतः ! "जस्तु जेतरी''तिवाक्यात् । ल-इन्द्रः तद्वत् दो-दानं यस्य, सं० हे लद !। त्वामाम्रकूटः-शत्रुरपि शिरसा धारयिष्यति । त्वां किम्भूतं ?, अध्वा-मार्गो न्यायरूपः तस्मिन् 'रलयोरैक्यात्' क्रान्तः-चलितः सः, तं अध्वक्लान्तम् । पुनः किं० ?, प्रतिमुखगाः-प्रतिकूलवक्त्रगाः ताः-तस्करा यस्मात् सः, तं प्रतिमुखगतम् । अवश्यं-निश्चितं-नितरां ददाति ड प्रत्यये निदः-नृपः । अधिकारात् तस्याऽपत्यं नैदः, तस्य सं० हे नैद !-नृपतनय !। त्वं आ-समन्तात् सारेण-द्रव्येण-बलेन वा, तस्य-पुरुषस्य, अथवह्नि-दुःखमग्निं शमयेः । तस्य कस्येत्याह-'यत्तदोर्नित्य-सम्बन्धात्' यस्य उपकारः महत्सु-महानुभावेषु फलति । किम्भूतः ?, सन्-शोभनो यो भावः तेन आर्द्रः-क्लिन्नः सः सद्भावार्द्रः । न चिरेण-शीघ्रम् ॥१८॥

छन्नोपान्तः परिणतफलज्यो(द्यो)तिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ।

---

१. मेघदूतेऽयं प्रक्षिप्तत्वेन मतः श्लोकः ॥
२. **वक्ष्यति श्लाघ्यमानः** मु. मेघ० ॥
३. **नैदाघ०** मु. मेघ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामस्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१९॥

व्याख्या - छन्नोपान्त इत्यादि । अमरवत्-देववत् मिथुनं-रतं-सङ्गतिर्वा यस्य सः अमरमिथुनः । "मिथुनं रतसङ्गत्योनि(रि)"**त्यनेकार्थः** । तस्य सं० हे अमरमिथुन !! त्वं भुवः-पृथिव्याः मध्ये-अन्तरे प्रेक्षणीयां-प्रकर्षेण दर्शनीयां अवस्थां दशां यास्यति । त्वं किम्भूतः ? निश्चलः । पुनः किम्भूतः ?, छन्नोपान्तः-आवृतपार्श्वः । कैः ?, परिणतफलज्योतिभिः-परिणतं-पक्वं फलं शुभाशुभरूपं, ज्यो(द्यो)तयन्ति-शास्त्रेण प्रकाशयन्त्येवंशीलाः ते परिणतफलज्यो(द्यो)तिनः-शास्त्रेण शुभाशुभफलप्रकाशनात् निमित्तज्ञाः तैः; काननाम्रैः-वनसहकारतुल्यैः; सर्वेषां फलप्रदर्शनात् । पुनः किम्भूतः त्वं ?, मः-चन्द्रः स एव 'रलयोरैक्यात्' चरः-स्पशो यस्य सः । अथवा मवत् रात्रिचारित्वात् चरा यस्य स मचरः । पुनः किम्भूतः ?, श्यामः-प्रयागवटः सर्वेषां तापवारकत्वात्, अथवा अवत्-कृष्णवत् श्यामः-वृद्धदारको यस्य सः । पुनः किं० ?, तानां -तस्कराणां नो-बन्धो यस्मात् स तनः । काव्यस्य चित्रत्वात् विसर्गलोपः । पुनः किम्भूतः ?, शेषवत्-शेषनागवत् यो विस्तारः तेन पाण्डुः-गौरः शेषविस्तारपाण्डुः । भुवो मध्ये किम्भूते ?, आरूढे-अध्युषिते । कस्मिन् ?, त्वयि-त्वद्विषये । किम्भूते त्वयि ?, स्निग्धा-अरूक्षा वेणी-केशबन्धो यस्य सः । तथा 'शसयोरैक्यात्' ईशो-महादेवस्तद्वत् वर्णाः -शरीरस्य-स्तुतिर्वा यस्य सः । ततः कर्मधारयः, तस्मिन् स्निग्धवेणीसवर्णे । अथवा स्निग्धानां-मित्राणां वेणीसवर्णे-भूषकत्वात् शिरःशिखासमाने । अः-कृष्णः-तद्वत् मस्तके लक्षणापेतत्वात् शिखा-चूडा यस्य सः, तस्य सं० हे असिख !! हे र !-हे नर ! । अथवा 'शसयोरैक्यात्' असिः-खङ्गः तेन खर ! - अतीक्ष्ण !, राक्षसविशेषे वा विपक्षाणां भक्षकत्वात् सः, तस्य सं० तथैव । शेषवत्-शेषनागवत् विस्तारः-प्रपञ्चो यस्य स तस्य सं० हे शेषविस्तार ! इत्यपि बोध्यम् । अनूनं-अहीनं यथा स्यात् तथा । इ इति सम्बोधने । वकारः पुनरर्थे ॥१९॥

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्त्तं
तोयोत्सर्गाद् द्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिस्थे(च्छे?)दैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या-स्थित्वेत्यादि । वनेषु-काननेषु चराः-स्पशाः यस्य सः, तस्य सं० हे वनचर ! । वधूभिः आलिङ्गनादिना भुक्त-उपभुक्तः यः सः, तस्य सं० हे वधूभुक्त ! । तानां-तस्कराणां ऊः-हिंसनं तत्र यो यमः सः, तस्य सं० हे तोय । द्रुता-विलीनाः ताः- तस्करा यस्मात् सः, तस्य सं० हे द्रुतत ! - हे नरेन्द्र ! । तस्मिन्-गुरौ सति त्वं भूतिं-समृद्धिं द्रक्ष्यसि-विलोकयिष्यसि । तस्मिन् किम्भूते ?, उपलो-ग्रावा, तथा विषं-गरं, तद्वत् "परद्रव्याणि लेष्टुवत्" इत्य(त्यु)क्तेः, मा-कनकादिरूपा लक्ष्मीर्यस्य सः, तस्मिन् उपलविषमे । पुनः किम्भूते ?, "विन्ध्यो व्याधाऽद्रिभेदयो"रि**त्यनेकार्थ**वचनात् विन्ध्यो-व्याधो-वधको(क) इत्यर्थः । तन्निषेधात् अविन्ध्यौ-अवधकौ-सर्व्वजीवप्रतिपात(ल)कौ पादौ यस्य सः अविन्ध्यपादः । तस्मिन् अविन्ध्यपादे । यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' यः श्रीगुरुः उत्सर्गात् अनपवादमार्गात् कुञ्जे-कुडङ्गे मुहूर्त्तं कालविशेषं स्थित्वा परं स्थविरकल्प-मार्गाऽपेक्षया उत्कृष्टं वर्त्म-मार्गं जिनकल्परूपं तीर्ण-आचीर्णो भवतीत्यर्थः । यः किम्भूतः ? रस्य-कामस्य गति-र्नाशो यस्मात् स रगतिः । यद्वा रा-तीक्ष्णा गति-र्विहारो यस्य स रगतिः । भूति(तिं)किम्भूतां ?, इः-कामः स्व(स) एव गजः तस्य इगजस्य-कामगजेन्द्रस्य रेवां-कामगजोत्पत्तिहे[तु]त्वात् नर्मदातुल्यामित्यर्थः । पुनः किं०?, अविशीर्णां, कैः? दैः-दानैः अविच्छिन्नां [या]चकादौ त्यागविधाना-दक्ष(क्षा) मित्यर्थः । पुनः किं० ?, इवविरचितां इं-कामं, "स्याद्वात् गतिहिंसयो"रिति वाति-हिनस्ति स इवः कामहननात् साधुः-शम्भुर्वा । यद्वा इ इति पादपूरणेऽव्ययः, वः शम्भुर्वा तेन विरचितां-कृतां, अङ्गेत्यामन्त्रणे ॥२०॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टिं(ष्टि)-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।
अन्तस्सारं घनतुलयितुं नाति(नि)लः शक्ष(क्ष्य)ति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णतागौरवाय ॥२१॥

व्याख्या-तस्यास्तिक्तैरित्यादि । वने-गृहे गजा-हस्तिनो यस्य । "वनं प्रश्रवणे गेहे प्रवासेऽम्भसि कानने" **इत्यनेकार्थात्**, सः, तस्य सं० हे वनगज !। हे तोय !- स्वच्छस्वभावत्वात् हे नीर ! मां-लक्ष्मीं ददाति तस्य सम्बोधनं हे माद ! । आये-लाभे गः-गणेशः, "गो गन्धर्वगणेशयो"रिति **सुधाकलशात्**, सः, तस्य सं० हे आयग ! । हे घन !-हे दृढ ! प्रतिज्ञानिर्वाहकत्वात् । त्वां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुलयितुं-तव सादृश्यं कर्तुं आ-लक्ष्मीः तस्या[:], "निस्तु नेतरी"**त्येकाक्षरी**वाक्यात् निः-नेता, स चासौ ल-इन्द्रश्च स-आनिलः न शक्ष्यति-न समर्थो भविष्यति । त्वां किम्भूतं ?,तस्याः समृद्धेः तिक्तैः-मनोज्ञैः मदैः-हर्षैः सितं-धवलं अशुभ-कर्म्मबन्धाभावात् । समुच(च्च)ये । लः किम्भूतः ?, वान्ता-उद्गीर्णा वृष्टिर्येन स वान्तवृष्टिः "इन्द्रात्वृष्टि"रिति **स्मृतेः** ।२। पुनः किं० ? छा-निर्म्मला ई-र्लक्ष्मीर्यस्य सः छेः । त्वां किम्भूतं ?, जम्बुः(म्बूः)-जम्बु(म्बू)द्वीपः, कुञ्जाः-निकुञ्जाः, तेषु प्रतिहतः-आहतः 'रलयोरैक्यात्' रयः-तूर्यत्रयी यस्य सः, तं तथैव । पुनः किम्भूतं ?, अन्तर्म्मध्ये सारं-बलं यस्य सः, तं अन्तःसारम् । १। भवति त्वत्समीपे सर्वः रिक्तः-अर्थहीनोऽपि जनः पूर्णतागौरवायः स्यात्-पूर्णा-परिपूर्णा ता-लक्ष्मीः, तथा गौरवं मः-लघुर्लघिमानं प्राप्तः (?) तथा (?) यस्य सः पूर्णतागौः (?) । ह त्वं (?) तथा अयो-लाभो यस्य स पूर्णतागौरवाय[:]। अत्र चित्रत्वात् विसर्गो, यद्वेदं पदं नृपविशेषणं क्रियते ततः हे पूर्णतागौरवाय ! त्वत्समीपे सर्वोऽपि रिक्तः 'रलयोरैक्यात्' लघुः-रघुर्भवति-रघुराजेव भाग्यवान् भवतीति भावः ॥२१॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केशरैरर्धरूढि(ढै)-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ।
[१]दग्धारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥२२॥

व्याख्या-नीपं दृष्ट्वेत्यादि । हरीणां-अश्वानां ता-लक्ष्मीर्यस्य सः, तस्य सं० हे हरित !। हे क !-हे मित्र ! जनहितत्वात् । अः-कृष्णः तद्वत् ऋद्धः-समृद्धः सः, तस्य सं० हे अर्द्ध ! दग्धानि अरण्यानि यैः ते दग्धारण्याः वह्निशस्त्रमयत्वात् । ईदृशा इषवः-बाणां(णाः) तैः अधिकः-अतिरिक्तः सः, तस्य सं० हे दग्धारण्येष्वधिक !। जेषु-जेतृषु ल-इन्द्रः, तस्य सं० हे जल !। हे ल !-हे इन्द्र !। कस्याः ?, ऊर्व्याः-पृथिव्याः । ते-तव 'शसयोरैक्यात्' शरैः-बाणैः 'रलयोरैक्यात्' दरीः-गिरिगुहाः उकुलाः । अनुकच्छं-कच्छं प्रति, अहं शङ्के-विवर्कयामि । 'उरीश्वर' इति वाक्यात् ऊनां-एकादशरुद्राणां कुलं-गृहं यत्र ताः उकुलाः । कोऽर्थः ?, आविः-प्रकटं, भूतेभ्यः-प्रेतेभ्यः प्रथमं-अग्रेसरत्वं यथा स्यात्तथा भूतप्रथमं । शरैः किम्भूतै ?, "रुः सूर्ये रक्षणेऽपि चे"ति

१. जग्ध्वारण्येष्वधिक० मु. मेघ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुधाकलशवाक्यात् रु:-सूर्य:, तेन ऊढा:-स्वविमाने धारिता: ते रूढा: । तै: रूढै: । किं कृत्वा ?, नितरां ई-लक्ष्मीं पातीति नीपं एवंविधं कं-सुखं ते-तव दृष्ट्वा अहं शङ्के । अत एव वैरिणां विनाशात् त्वं सुखेन तिष्ठसीति भाव: । चकार: पुनरर्थे । ते-तव सुरभिं-शोभनं गन्धं प्रति मार्गं-मृगमदं सूचयिष्यन्ति-कथयिष्यन्ति । के ?, इत्याह-सारङ्गा:-सबलपुरुषा: नृपति-श्रीपतिप्रभृतय: । यत:= "सारङ्गश्चातके भृङ्गे कुरुगे(रङ्गे ?) च मतङ्गजे ।

पक्षिभेदे च सारङ्ग: सारङ्ग: सबलेष्वपि ॥१॥ "इति । किं कृत्वा ?, आघ्राय-सिङ्घित्वा । तव किम्भूतस्य ?, बमुच:-'बवयोरैक्यात्'-"बकारो वरुणे पद्मे कलहे विगतौ" इति **सुधाकलश**वाक्यात् बं-कलहं मुञ्चति-त्यजति, क्विपि स बमुग्, तस्य बमुच: । "वष्टि भागुरि"रित्यादिना अपेरकारलोप: ॥२२॥

[१]अम्भोबिन्दुग्रहणरभसांश्चातक(का)न्वीक्षमाणा:
श्रेणीभूता: परिगणनया निर्दिशन्तो बलाका: ।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धा:
सोत्कण्ठानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥२३॥

व्याख्या- अम्भोबिन्दु इत्यादि । भो इत्यामन्त्रणे । हे निप्रिय ! - नितरां प्रियो-वल्लभस्तस्य सं० । अथवा "निस्तु नेतरि" **इत्येकाक्षरी**वचनात् नीनां-भूमिपतीनां प्रिय: तस्य सं० हे निप्रिय ! । सहचरीभि: सम्भ्रमेण त्वरया आलिङ्गित-अ(आ)श्लिष्ट:, तस्य सं० हे सहचरीसंभ्रमालिङ्गित !। त्वां-अर्थात् श्राद्धं आसाद्य-प्राप्य सिद्धा:-सर्वप्रकारै: प्राप्तप्रतिष्ठा:-श्रीपरमगुरव: मानयिष्यन्ति । क्व ?, स्तनितसमये । स्तनित-उक्त: अर्थाद् भगवा(व)ता य: समय:-सिद्धान्त: तस्मिन् सिद्धा: । किं कुर्वाणा: ?, वीक्षमाणा:-पश्यन्त: । कान् ? अतन्ति-सततं गच्छन्ति इति आतका:-प्राणिन: तान् आतकान् । किम्भूतान् ?, 'बवयोरैक्यात्' उ:-शम्भु:, इन्दु:-चन्द्र:, तयोर्देवत्वेन ग्रहणं-देवताबुद्ध्याऽङ्गीकरणं तत्र रभसा:-[उ]त्सुकायन्ते, तथैव तान् बिन्दुग्रहणरभसान्-मिथ्यात्विन: पश्यन्त: इत्यर्थ: । पुन: किं कुर्वन्त: ?, निर्दिशन्त: । किं ?, अं-परब्रह्म प्ररूपयन्त इत्यर्थ: । पुन: किं० ?, श्रेणीभूता:-उपशमश्रेणीभूता इत्यर्थ: । कथं ?, अनि-न विद्यते इ:-कामो यत्र तत् अनि-अकामं यथा स्यात्तथा श्रेणीभूता इत्यर्थ: । पुन: किम्भूता: ?,

१. क्षेपकोऽयमिति मु. मेघ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परि-समन्तात् गणे-गच्छे नयो-न्यायो येषां ते परिगणनयाः । पुनः किम्भूताः ?, बलेन-शौर्येण आः-श्रीकृष्णाः, तथा काः-श्रीब्रह्माणः, ते बलाकाः । पुनः किम्भूताः ?, सह उत्कण्ठया वर्तते(न्ते) ये ते सोत्कण्ठाः अथवा प्राणिनः । किं० ? सोत्कण्ठान् । सा-लक्ष्मीः, तस्यां उत्कण्ठा वर्तते येषां ते सोत्कण्ठाः-अर्थपरा इत्यर्थः । तान् सोत्कण्ठान् । पुनः किं० ?, सहचरीभिः समालिङ्गिता ये ते सहचरीसमालिङ्गिताः-कामपरा इत्यर्थः, तान् सहचरीसमालिङ्गितान् । इ इति प्रत्यक्षेऽव्ययः । कोऽर्थः ? अतकान्-अन्यप्राणिनः, सोत्कण्ठान्-अर्थपरान् तथा सहचरीसमालिङ्गितान् कामपरान् पश्यन्तः सन्तः सिद्धाः-श्रीगुरवः त्वां मानयिष्यन्ति इति भावः इत्यप्यर्थान्तरं ज्ञेयम् ॥२३॥

उत्पश्यामि द्रुतमपिसखेमत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥२४॥

उत्पश्यामीत्यादि । खैः-सुखैः सह वर्तते यः सः, तस्य सं० हे सख ! । ईमन्तः-इभ्याः तेषां, निर्लोभत्वात् प्रियः-वल्लभः, तस्य सं० हे ईमत्प्रिय !। द्रुतं-शीघ्रं मा-लक्ष्मीर्यस्मात् सः, तस्य सं० हे द्रुतम ! । ते-तव पर्वतेऽपि-गिरौ अपि अर्थं-द्रव्यं उत्प्रधानं पश्यामि-वीक्ष्ये(क्षे) । पर्वते किम्भूते ?, कालाः-नीलाः क्षाः-क्षेत्राणि यत्र, "क्षः क्षेत्रे रक्षसी"**त्येकाक्षरी**वचनात्, सः, तस्मिन् कालाक्षे । ककुभवत्-वृक्षविशेषवत् सुरभयः-गावो यत्र सः अथवा को-ब्रह्मा, तस्य कुः-भूमिः, तस्यां भाति, तस्य सं० । ककुभ ! पर्वते किं० ?, सुरभौ-सुगन्धे । अथवा कस्य-ब्रह्मणो या कुः-भूः तस्यां भान्ति ताः ककुभाः, ईदृशाः सुरभयो-गावो यत्र सः, तस्मिन् ककुभसुरभौ । पुनः किम्भूते ?, पर्वणः-उत्सवस्य ता-लक्ष्मीर्यत्र सः तथैव । अथवा पर्वते पर्वते तव द्रव्यं वीक्षे । शेषं तथैव इत्यपि व्याख्येयम् । "**वष्टि भागुरि**"रित्यादिना अपेरकारलोपः । तव किम्भूतस्य ?, यियासोः गन्तुमिच्छोः । क(कं?) पं०(कथं)- पन्थानं न्यायमार्गमित्यर्थः । सह जलेन महत्त्वरूपेण वर्तते यः, तस्य सम्बो० हे सजल !। भवान् कथं प्रति गन्तुं आशु व्यवस्येत् -अध्यवसायं कुर्यात् । "कः सूर्यमित्र वाद्यमित्र वाद्यग्नि-ब्रह्मात्मयमकेकिषु"-"थो भवेद् भयरक्षणे भूधरे च तथा भारे ।" इति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुधाकलशवाक्यात् कः सूर्यस्तस्य थो-भारः-प्रतापादिरूपः जगदुपकर्तृत्वादिरूपो वा, तं कथम् । भवान् किम्भूतः ?, उत्प्रधानं यातः-ज्ञातः, 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' । ज्ञातः कैः ?, शुक्लापाङ्गैः-गुरुभिरपि । शुक्लं-निःपापत्वात् विमलं अपाङ्गं-गणस्थापनारूपं तिलकं येषां ते, "अपाङ्गं नेत्रान्तपुंद्र(पुण्ड्र)यो" रि**त्यनेकार्थात्**, तैः शुक्लापाङ्गैः । किं कृत्वा ? स्वागतीकृत्य-आदरं दत्वा । किम्भूतैः शुक्लापाङ्गैः ?, नयनैः, नये-न्याये नो-बुद्धिर्येषां ते नयनाः तैः नयनैः । "नो बुद्धौ ज्ञानबन्धयो'रिति वाक्यम् । पुनः किम्भूतो भवान् ?, के- सुखी पच(र)दुःखं न जानाति, यत उक्तं च - "सुखी न जानाति परस्य सु(दुः)खं"; त्वं तु परदुःखज्ञातृतया-सुखे सति अकं-दुःखं अस्यति-क्षिपतीति क्विपि अकाः-दुःखोच्छेदक इत्यर्थः ॥२४॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकै[ः]शूचिभिन्नैः
नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥२५॥

व्याख्या-पाण्डुच्छायेत्यादि । पाण्डुरुज्ज्वला चारित्रादिना छाया-शोभा यस्य सः, तस्य सं० हे पाण्डुच्छाय ! उः-शम्भुः तद्वत् पाति-रक्षति(ति) । पः-कामस्य(?) (कामः सः) तस्य सं० हे ऊ(उ)प !-वनं । शूच्या-सेवन्या अर्थ्या(र्था?)दुपदेशरूपिण्या भिनत्ति क्विपि, तस्य सं० हे शूचिभित् ! कस्य(स्ये)ति । उपं, ईदृशं "वनं प्रश्रवणे गेहे"इति वचनात् वनं-गृहं यस्य तस्य सम्बो० हे उपवना (न)!। अथवा ऊर्दया तां पान्ति-रत्र(क्ष)न्ति ड प्रत्यये ऊपानि-जीवदयापराणि वनानि-गृहाणि यस्मात् । हे नू(नी)डारम्भ !- नितरां ईडा-स्तुतिस्तस्या आरम्भः-प्रारम्भो यस्य सः नीडारम्भः, तस्य सं० । इः-कामः तस्य एः, शूचिभिद्-व्यथकत्वात् सेवनीभेदकः । कैः कृत्वा ? नैः-ज्ञानैः मतिश्रुत्या(ता)दिभिः "नो बुद्धौ ज्ञानबन्धयो"रिति वाक्यात् । नैः किम्भूतैः ?, केतकैः । "कः सूर्यमित्रवाद्यग्निब्रह्मात्मयमकेकिषु, प्रकाशवक्रयो"रिति **सुधाकलश**वाक्यात् कः-सूर्यः, तद्वत् इतः-, 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' ज्ञातः कः-प्रकाशो येषां ते केतकाः, तैः केतकैः । परिणतं-परिपक्कं फलं-स्वर्गादिरूपं यस्मात् सः, तस्य सं० हे परिणतफल ! । पे-मार्गे ज्ञानादिरूपे यतते क्विपि हे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयत्! - हे गुरो !। त्वयि आसन्ने सति हंसाः-निर्लोभाः राजानः **श्रीअकबर**नामानः परिसंपत्स्यन्ते-भविष्यन्ति । "हंसोऽर्के मत्सार(मत्सरेऽ)च्युते खगाश्वयोगि-मन्त्रादिभेदेषु परमात्मनि निर्लोभनृपतौ प्राणवाते श्रेष्ठेऽग्रतः" **इत्यनेकार्थः** । हंसा[:] कीदृशाः ? इत्याह-वृता-अङ्गीकृता ई-श्रीः यैः ते वृतयः । पुनः किम्भूताः ? गृहाः-दाराः, तथा बलं-स्थाम, तद्वन्तौति(?) ह्लां(अतिल)क्षणोपेतत्वात् भुजौ-बाहू येषां । अथवा गृहा-दाराः तेषां यद्बलं-सत्त्वं "स्त्रीणां हि सत्त्वं प्रशस्यं" । यत उक्तं च-

"पाण्योरुपकृतिं सत्त्वं स्त्रियो भग्नशुनो बल"मिति ॥ तद्वत्तौ भुजौ-बाहू वा येषां ते तथैव । पुनः किम्भूताः ? मा-लक्ष्मीः तस्या[:]कुलं-समूहो यत्र तानि माकुलानि ईदृशानि ग्रामचैत्यानि येन्वः(भ्यः?) ते माकुलग्रामचैत्याः । अथवा मया-श्रिया आकुलानि-अत्यन्तव्यग्राणि ग्रामवत् चैत्यानि-जिनप्रासादाः येभ्यः ते माकुलग्रामचैत्याः । पुनः किम्भूताः ? श्यामं-कृष्णं जम्बूद्वीपस्य वनं-काननं, तावत् अन्तः-सीमा येषां ते श्यामजम्बूवनान्ताः । पुनः किं० ? इनवत्-सूर्यवत्, तिष्ठन्तीति इनस्थाः । इ इति गुरोरामन्त्रणे, अत्र 'स्वरे यत्वं वे'ति यि । पुनः किं० ? दशार्णेभ्यः -देशविशेषेभ्यः आ-लक्ष्मी[:]येषां ते दशार्णाः । त्वयि किम्भूते ?, कति को-मित्रं तदिवाऽऽचरतीति शतरि कन्, तस्मिन् कति ॥२५॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा ।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यत्सत् (यस्मात्)
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो चै(वे)त्रवत्याश्चलोर्म्मि ॥२६॥

[व्याख्या-तेषामित्यादि।]हे दिक्षु प्रथित !- काष्ठासु हे विख्यात ! विशिष्टं-विविधं वा दिशति वितरति स, तस्य सं० हे विदिश !। अथवा विदा-ज्ञानेन इं-कामं श्यति-तनूकरोति, तस्य सं० हे विदिश !- हे गुरो ! । तेषां-श्रीनरेन्द्राणां निर्ल्लोभनृपा[णां]राजधानीं गत्वा कामुकत्वस्य-सुन्दरतायाः अविकलं-मनोज्ञं फलं भवान् लब्धा-लप्स्यते । राजधानीं किं० ?, आ-समन्तात् लक्षणानि-निवासयोग्यगुणा यक्रसो (यत्र सा) निर्दूषणत्वात् सा, ता(तां) । अथवा आ-लक्ष्मीः, तस्या लक्षणं-चिह्नं यत्र सा, तां आलक्षणां । भवान् किं० ?, सती-सो(शो)भना या-चारित्ररूपा-लक्ष्मीर्यस्य सः सद्यः । यत्-यस्मात् तेषां-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्लोभनृपाणां सा-लक्ष्मी[:]यस्मात् सः, तस्य सं० हे तत्स ! - गुरो ! । त्वं चे(चै)त्रवत्या नद्याः पय इव-जलमिव मुखं-वक्त्रं पासि-रक्षसि । मुखं किं० ?, स्तनितसुभगं,-स्तनितः-शब्दितः सुष्ठु भगो-वैराग्यं ज्ञानं यशो वा येन तत् तथैव । पुनः किम्भूतं ?, 'शसयोरैक्यात्' न विद्यते शीः-निद्रा हिंसा वा यत्र तत् अशि । पुनः किं० ?, स्वादु-स्वादयुक्तम् । पुनः किम्भू० ?, भ्रुवो-रोमपद्धत्या भाति-शोभते तत् भ्रूतं (भ्रूभं?) । पुनः किं०?, गं-गणेशतुल्यं लाभदातृत्वात् । चकारः पुनरर्थे । पुनः किं० ?, लः-इन्द्रः, तस्य ऊर्म्मि[:]हर्षकल्लोलो यस्मात् तत् लोर्म्मि । तः-तस्करः पुत्ररजन्यामेव प्रादुर्भावात्, तत्सदृशो यः इः-कामः तस्य ये रोपाः-मार्गणाः तेषां अन्तो-नाशो यस्मात् सः, तस्य सं० हे तीरोपान्त ! । इदं गुरोरामन्त्रणम् ॥२६॥

नीचैराक्षं(ख्यं)गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्सम्पर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्कैः(पुष्पैः) कदम्बैः ।
यः पय(पण्य)स्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥२७॥

व्याख्या-नीचैराख्यमित्यादि । नीचो-निखर्वः पामरो वा ए[:]-विष्णुर्यस्य, सम्यग्-सम्यग्दृष्टित्वात् यस्य सः तस्य सं० हे नीचैः !। इः-कामः तत्र विध्वंसकत्वात् दाहकत्वात् वा वो-महेसः (शः), अथवा इं-कामं "स्याद् वाल् गमनहिंसयो"रिति वाक्यात् वाति-हिनस्ति, तस्य सम्बोधनं हे इव !- हे गुरो !। त्वं तत्र-तस्यां राजधान्यां तं-श्रीनरेन्द्रं अधिवसे[:]-वासं कुर्या इत्यर्थः । तं किम्भूतं ?, रेषु-नरेषु आख्या-अभिधा यस्य सः तं राख्यं । पुनः किं० ? गिरिं - पूज्यं - "गिरिः पूज्येऽक्षिरुजि कंतु(चु?)के शैलगिरियके" **इत्यनेकार्थ**वाक्यां (क्यात्) । पुनः किम्भूतं ?, पुलकितं-रोमाञ्चितं । कुतः ? त्वत्संपर्कात्-तव संयोगात् । किम्भूतात् ?, विश्रामहेतोः-विश्रामस्य हेतुः-प्रयोजनं यः सः, तस्मात् तथैव । 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्" । तं कस्मि(कमि)त्याह-नागराणां यौवनानि उद्दामानि प्रथयति; उद्दामा-अनर्गला आ-लक्ष्मीर्येषु तानि उद्दामानि कर्मतामापन्नानि । किंविशिष्टो यः ?, पण्यः-सु(स्तु)त्यः । कैः ? शिलावेश्मभिः । किं० ? स्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः-स्त्रीणां रतिः-सुरतक्रीडा, तस्याः परिमलः-कामुक लोकप्रियाविमर्दत्सं(विमर्दसं)भवो गन्धस्तदु(मु)द्गिरन्तीत्येवंशीलानि तानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथाभूतानि तैः ॥२७॥

विश्रान्तः सन् [व्र]जनगनदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैयू(र्यू)थिकाजालकानि ।
गण्डस्वेदोपनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायाद(दा)नात्क्षणपर(रि)चितः पुष्फ(ष्प)लावीमुखानाम् ॥२८॥

व्याख्या-विश्रान्त इत्यादि । व्रजो-गोष्ठं स एव नगो-वृक्षस्तत्र नदीतीरः-नदीतटतुल्यः गोचारकत्वात्, तस्य सं० हे व्रजनग[न]दीतीर ! । यूथं-तिर्यग्गणो मृगव्याघ्रगजादिकः सोऽस्यास्तीति यूथी, यूथी एव यूथिकः, तस्य सं० हे यूथिक ! । "गण्डस्तु वीरे पिटकचिह्नयो"रित्य**नेकार्थ**वाक्यात् गण्डा-वीरास्तेषां स्वेदः स्वाधिक्यात् यस्मात् सः, तस्य सं० हे गण्डस्वेद !। अथवा गण्डेषु-पिटकेषु स्वं-द्रव्यं यस्य सः, तस्य सं० हे गण्डस्व !। हे ईद !- हे लक्ष्मीद !, हे नः !- हे नर !, हे ज ! इति सम्बोधने । 'रलयोरैक्यात्' आक्रान्तः-दानादिभिः- अतिक्रान्तः कर्णः-कर्णनृपतिर्येन सः, तस्य सम्बोधनं हे आक्रान्तकर्ण ! । पुष्पं-धनदविमानं लाति-गृह्णाति, तस्य सं० हे पुष्पल ! । "अर्वः (विः?) प्रकाशः आदित्यो भूमिः पशुः राजे" त्या**द्युणादिवृत्ति**वाक्यात् अवीमुखानां-पशुप्रभृतीनां, तथा उद्यानानां-पक्षिणां, उत्-उ(ऊ)र्द्ध्वं यानं-चलनं येषां ते उद्यानाः, तेषां तथैव । उत्-प्रधानानि पलानि-मांसानि तेषां जातानि । "जातीः समूहान्वाजातां जात्योऽथ जनिष्वि" **त्यनेकार्थ**वाक्यात् अपनय-वर्जय । कुतः ? छाया-शोभा, तस्या आदानं-ग्रहणं तस्मात् छायादानात् । त्वं किं कुर्वन् ?, सिञ्चन्-अभ्युक्षन् । कान् ?, अजालकान्-श्रीगुरून्; "अजः छागे हरे विष्णौ रघुजे वेधसि स्मरे" **इत्यनेकार्थात्** अजस्य-कामस्य, "अली भूषापर्याप्तिनिवारणेष्वि"ति वचनात् आलकाः-निवारकाः ते अजालकाः स्मरनिवारकत्वात् गुरवः इत्यर्थः । तान् तथैव । इः पादपूरणसम्बुद्धौ । कैः ?, नवजलकणैः- नवः-स्तुतिः सैव जलकणाः-जलशीकराः ततस्तैः । पुनः किम्भूतः ? विश्रान्तः-विगतश्रमः, सकलकृत्यकरणात् । पुनः च किं० ?, सन्-सज्जनः । पुनः किं० ?, क्षणपरिचितः क्षणैः-महोत्सवैः परि-समन्तात् चितो-व्याप्तः ॥२८॥

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो माश्मभूरुज्जयन्याः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्याद्या(विद्युद्दा)मस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥२९॥

[व्याख्या]- वक्र[ः]पन्था इत्यादि । सौधे-नृपमन्दिरे, तथा उत्सङ्गे, उत्-प्रधानः सङ्गः-सङ्गतिः, तत्र च प्रणयः-प्रेम यस्य सः, तस्य सं० हे सौधोत्सङ्ग-प्रणय !। वि-विशिष्टा द्युत्-कान्तिर्यस्य सः, तस्य सं० हे विद्युत् !। दामानि-स्रजः तैः स्फुरितः-दीप्तः, तस्य सं० हे दामस्फुरित !। भवतः-तव उत्तराशां-उदीचीं दिशं प्रति प्रस्थितस्य-चलितस्य भवतः-तव वक्रः-मङ्गलोऽपि तव पुण्यात् पन्था-मार्गः स्यात् । कोऽर्थः ? बुधमङ्गलदिने दिक्शूलत्वात् उत्तरस्यां नराणां गमनं निषिद्धं, तव तु शुद्धम् । मङ्गलेनाऽपि त्वया सह किमपि न चलते इत्यर्थः । इ इत्यामन्त्रणे । तेभ्यः-तस्करेभ्यः त्रायते-रक्षति, तस्य सं० हे तत्र ! - हे नरेन्द्र !। त्वं वञ्चितोऽसि । - उः-शम्भुः, तेन अञ्चितः-पूजितः । कुत इत्याह-यत्-यस्मात् हेतोः चकितैः-कातरनरैः स्वयं शूरत्वात्, तथा पौराङ्गनानां-पुरवासिजनस्त्रीणां लोचनै-र्नयनैः सह त्वं न रमसे-परस्त्रीपरित्याग(गि)त्वात् न क्रीडसीत्यर्थः । लोचनैः किम्भूतैः ?, लोलापाङ्गैः-चञ्चलनेत्रप्रान्तैः । कातरनरपक्षे लोलाः-चञ्चलाः, तथा अपगताः(गतानि?) अङ्गां(ङ्गानि ?)-अवयवाः येषां ते अपाङ्गाः, लोलाश्च ते अपाङ्गा-असमर्थाश्च, तैः तथाभूतैः । त्वं किं० ?, विमुखः-विश(शि)ष्ट-वदनं(नः?) । कस्याः ?, उज्जयन्याः-अवन्त्याः । सर्वासां पुरीणां उपग्रहणार्थं अवन्त्या ग्रहणम् । पुनः किम्भूतः ? मस्य-चन्द्रस्य 'शसयोरैक्यात्' अस्मानः (अश्मानः)-उपलाः ते मास्मानः-चन्द्रकान्तमणयः, तेषां भुवो-भूमयो यस्य सः माश्मभूः ॥२९॥

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्त्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथिभवरसाभ्यन्तरं संनिपत्य
स्त्रीणामाद्या प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥३०॥

व्याख्या-वीचिक्षोभेत्यादि । विशिष्टं ध्यायति, तस्य सं० हे विध्य ! (विन्ध्य!) !-हे विन्ध्याचलतुल(तुल्य) !। गजेन्द्रविराजितत्वात् त्वम् । "आ श्रिया"मिति वाक्यात् आयाः-लक्ष्म्याः निः-पतिर्भाव(र्भव?) "निस्तु नेतरी"ति वाक्यात् । कृत्वा ?, रसाभ्यन्तरं-भूमध्यभागं संनिपत्याऽनुभूय । आया[ः]-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किम्भूतायाः ?, वीची(चि) क्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः । वीची(चि)-क्षोभः-तरङ्गक्षोभः, तथा स्तनितविहगश्रेणिः-शब्दितशकुनिपङ्क्तिः तद्वत् शब्दायमानत्वात् काञ्चीगुणो-मेखलागुणो यस्यां सा, तस्याः तथाभूतायाः । पुनः किं कुर्वत्याः ?, संसर्प्पन्त्या[:], 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' - जानन्त्याः (जानत्याः) । किं ? प्रणयवचनं-स्नेहवाक्यम् । किम्भूतं ?, स्त्रीणां-नारीणां पथि-मार्गे आद्यं मुख्यम् । पुनः किम्भूतं ?, स्खलितसुभगं-स्खलितः (तं)-पलितः(तं) सुष्ठु वैराग्यं यस्मात् तत् तथैव । त्वं किम्भूतः ?, विभ्रमः-विगतभ्रान्तिः । केषु ? प्रियेषु-वल्लभजनेषु, भ्रमरहितो वल्लभ इत्यर्थः । हि-निश्चितम् ॥३०॥

वेणीभूतप्रतनुसलिलातामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थयाव्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥३१॥

व्याख्या-वेणीभूतेत्यादि । हे जीर्ण !-हे चन्द्र ! सौम्यत्वात्, "जीर्णो जीर्णद्रुमेन्दुषु" **इत्यनेकार्थ**वाक्यात् । तथा हे प ! - हे रक्षक ! - जगत्पालक !। किं कृत्वा ? ऋणेः-दुर्गैः "ऋणं देवं(ये) जले दुर्गे" **इत्यनेकार्थात्** । ऋणैः किम्भूतैः ?, तटरुहतरुभ्रंशिभिः-तटे-पार्श्वे रुहन्तीति तटरुहाः, ते च ते तरवश्चेति । हे सुभग ! येन विधिना-प्रकारेण जयन्ती-इन्द्रपुत्री कार्श्यं त्यजति स विधिः त्वया उपपाद्यः-अनुष्ठेयः । कार्श्यं किम्भूतं ? अव्यं-प्राप्यं, अवेः प्राप्त्यर्थकत्वात् । कया ? विरहावस्थया-वियोगदशया । कस्य ? ते-तव । कोऽर्थः ? जयन्ती तव संयोगाभावेन दुर्बलत्वं गतेति भावः । पुनः कार्श्यं किं० ?, वेणीभूतप्रतनु-वेणीवत्-केशविन्यासवत् भूता-जाता प्रकृष्टा तनु-शरीरं यस्मात् तत् तथैव । तव किम्भूतस्य ?, सलिले-जले अः-कृष्णः तस्य ता-लक्ष्मीः, तां अतीतस्य-अतिक्रान्तस्य । अथवा अतिशयेन इतस्य-प्राप्तस्य 'गत्यर्थानां प्राप्त्यर्थकत्वात्' । जयन्ती किं० ?, पाण्डुरुज्ज्वला छाया-शोभा यस्याः सा पाण्डुच्छाया । पुनः किम्भूता ?, सिन्धुनदीतुल्या, सर्वेषामुपकर्तृत्वात् । विधिः किम्भूतः ?, सौभागी-सौभाग्यवान् । कार्श्यं किम्भूतं ?, अं-कृष्णं श्यामत्वात् ॥३१॥

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसरपुरीश्रीविशालां विशालाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३२॥

व्याख्या-प्राप्यावन्तीत्यादि । ई-लक्ष्मीः नुदति-प्रेरयतीति ईनुत्, ईदृशं अयनं-मार्गो यस्य तस्य सं० हे ईनुदयन !। हे कोविद !- विचक्षण ! । अवत्-कृष्णवत् नुः-शत्रुहननादिरूपा स्तुतिः येषां ते अनवः, ईदृशाः 'शसयोरैक्यात्' शरा-बाणाः यस्य[सः, तस्य]सं० हे अनुसर !। त्वया ईदृशी कथा-वार्त्ता प्रापि-प्राप्ता । हे अ !-कृष्ण !। कथा किं कुर्व्वती ?, अवन्ती-रक्षन्ती । कान् ?, ग्रामवृद्धान्, - ग्रामाः-संवसथाः, वृद्धाः-प्राज्ञाः स्थविरा वा, तान् । पुनः ?, पुरीं:-नगरीं विशालां-उज्जयिनीं-अवन्तीपुरीं । किम्भूतां ?, पूर्वं-श्रुतभेदः, तेन उद्दिष्टा-कथिता या तां पूर्वोद्दिष्टाम् । पुनः किम्भूतां ?, अलति-भूषयतीति अला, तां अलां । पुनः किम्भूतां ?, श्रीविशालां-ऋद्धयादिभिः विस्तीर्णाम् । पुनः ? गां-स्वर्गं अवन्ती । क्व सति ? स्वर्गिणां-दि(दे)वानां सुचरितफले-सुकृतफले स्वल्पीभूते-स्वल्पे सञ्जाते सति । स्वर्गिणां किम्भूतानां ?, गतानां-विज्ञातानां 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' । कैः ? पुण्यैः । किम्भूतैः ?, शेषैः-उज्ज्वलत्वात् शेषाहि सदृशैरित्यर्थः । पुनः ? डं-चन्द्रमण्डलं अवन्ती । डं किम्भूतं ?, कान्तिमत् - शोभायुक्तं खं-व्योमं यस्मात् तत् कान्तिमत्खं-डं । पुनः किम्भूतं ?, एकं-श्रेष्ठं, "एकोऽन्यः केवलः श्रेष्ठ" **इत्यनेकार्थ**वाक्यात् डं । पुनः किम्भूतं ? हृतं-राह्वादिभिः दिवः-आकाशात् अपहृतमपि चन्द्रमण्डलं तव कथा रक्षतीति भावः । इवत्-कामवत् वाति-गच्छति सः, तस्य सं० हे इव ! ॥३२॥

दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
सिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥३३॥

व्याख्या- दीर्घीकुर्व्वनि(न्नि)त्यादि । पटूनां-वाग्मिनां मदो-हर्षो यस्मात् सः, तस्य सं० हे पटुमद !। प्रत्यूषवत्-प्रभातवत् इषुभि-र्बाणैः स्फुटिता-प्रकटिता कमला-पद्मा यस्य, तस्य सं० हे प्रत्यूषेषुस्फुटितकमल ! । यात्-यमात् त्रायते-रक्षति तस्य सं० हे यत्र ! । सुरा-देवास्तद्वत् ता-लक्ष्मीर्यस्य तस्य सं० हे सुरत !।

१. ०र्हतमिव० मु. मेघ. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त(भ)वान् स्त्रीणां ग्लानि-बलहीनतां हरति-अपनयति । भवान् किं कुर्वन् ?, दीर्घे(र्घी)कुर्वन् । किं ?, कलं-मधुरध्वनं(निं), किम्भूतं ?, सारसानां-पक्षिविशेषाणां कूजितमिव कूजितं सारसशब्दतुल्यमित्यर्थः । भवान् किं० ?, आ समन्तात् मोदः-प्रमोदः 'अपास्ताशेषदोषाणा'मित्यादिलक्षणसूचितः, तथा मैत्री - मा कार्षीत् कोऽपि पापानी' त्यादिलक्षणसूचिता । तयोः कषायः-रसो विद्यते यत्र सः मोदमैत्रीकषायः । ''कषाय[:]सुरभौ रसे रागवस्तुनि निर्यासे क्रोधादिषु विलेपने वर्णे ''इ**त्यनेकार्थः** । पुनः किम्भूतः ?, अङ्गेन-वपुषा-अनुकूल[:]-प्रशस्तः सः अङ्गानुकूलः । अथवा अङ्ग इत्यामन्त्रणे, अनुकूलः कुटुम्बादीनां हितत्वात् । पुनः किं० ?, सिप्रावात इव प्रियतम[:]। अथवा **सिप्रानदी** यथा जनानां तीर्थभूतत्वेन प्रियतमाः(मा)तथा भवानपि । तथा वातो-वायुः स इव प्रियतमः । पुनः किम्भूतः ? प्रार्थनाचाटुकं-प्रियवाक्यात्मकं आरं-अरिसमूहो यस्य सः प्रार्थनाचाटुकारः ॥३३॥

[१]हारास्तारांस्तरलगुलि[२]कान् कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शिष्पश्यामान्मरकतमणीन(नु)न्मयूखप्ररोहान् ।
यस्यां दृष्ट्वा विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गान्
संलक्ष(क्ष्य)न्ते सलिलनिधयस्तोयमात्राविशेषः(षाः) ॥३४॥

व्याख्या-हारास्तारानित्यादिकाव्यं तथैव व्याख्येयम् । नवरं यस्यामित्यादि पदव्याख्याने यस्य श्रीनरेन्द्रस्य आं-लक्ष्मीं दृष्ट्वा । शेषं तथैव ॥३४॥

[३]प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
हैमं ताल द्रुम[वनम]भूदत्र तस्यैव राज्ञः ।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा-
दित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥३५॥

व्याख्या-प्रद्योतस्येत्यादि ।

(अतः परं कियानपि पाठो लेखनदोषात् त्रुटित इव आभाति । पत्रक्रमस्य यथाक्रमत्वेऽपि ३५तमस्य पद्यस्य वृत्तिः, ३६-३७ तमे पद्ये च वृत्तिसहिते न दृश्यन्ते । प्रत्यन्तरप्राप्तावेव एतत्पूर्तिः शक्या । **सम्पादकः** ॥)

---

१. क्षेपकोऽयमिति मु. मेध. ॥ २. **०गुटिकान्** ०मु. मेघ. ॥ ३. क्षेपकोऽयमिति मु. मेघ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

... ति क्विपि नपुंसके ह्रस्वत्वे आनि ॥३६-३७॥युग्मम् ॥

अप्यन(न्य)स्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदभ्येति भानुः ।
कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३८॥ व्याख्या (?)

[१]**पादन्यासक्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै-**
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥३९॥

व्याख्या-अप्य[न्य]स्मिन्नित्यादि । जलधरो-मेघस्तद्वत्, "महा उत्सव तेजसी" इति वाक्यात्, महस्तेज उत्सवो वा यस्य तस्य सं० हे जलधरमह ! नाये-न्याये, "नो बुद्धौ ज्ञानबन्धयो"रिति वाक्यात्, नो-बुद्धिर्यस्य तस्य सं० हे नयन ! । सं-शोभनं ध्यायति-चिन्तयति जनानां ड प्रत्यये सन्ध्यः तस्य सं० हे सन्ध्य !। आ-समन्तात् बलिनरेन्द्रवत् पटहो-दानसम्बन्धी यस्य तस्य सं० हे आबलिपटह ! । भवान् विषयं-देशमासाद्य-प्राप्य अस्मिन् काले अभि-भीरहन्ति (भीरहितं) यथा स्यात्तथा एति-चलति । देशं किम्भूतं ? स्थातव्यं-निवासयोग्यम् । कस्य ? ते-तव । पुनः किम्भूतं ?, अकालं-धवलं निःपापत्वात् । अथवा, अकं-दुःखं अलति-वारयतीति अकालः तं अकालम् । अथवा, न विद्यते कालः-दुःकालः-मरणं वा यत्र सः, तं अकालम् । देशमित्यत्रैकत्वं जातेरेकत्व-निर्देशात्(द्)ज्ञेयम् । भवान् किम्भूतः ?, भानुः-तस्करादिनाशकत्वात् भास्करत्वात् सूर्यतुल्यः इत्यर्थः । अपि पुनरर्थे । भवान् गर्जितानां-मत्तकुञ्जराणां, "गर्जितो मत्तकुञ्जरे" **इत्यनेकार्थ**वाक्यात् फलं-लाभं लप्स्यसे । फलं किम्भूतं ? अविकलं-मनोज्ञं । भवान् किं कुर्वन् ? शूलिनः श्लाघनीयां-महेशस्य श्लाघ्यां ईदृशीं तां-लक्ष्मीं कुर्वन्-सृजन् । गर्जि[ता]नां किम्भूतानां ?, आ समन्तात् मन्द्रो-मधुरगम्भीरो ध्वनिर्येषां तेषां आमन्द्राणाम् । "निस्तु नेतरी"ति अनि-पतिरहितं यथा स्या[त्त]था-देशमासाद्य । शेषं तथैव व्याख्येयम् । फलं किम्भूतं ? या-लक्ष्मीः अस्मिन्नस्तीति यावत् कर्मतामापन्नम् ॥३८॥

---

१. पाठोऽयमधिको लिखितोऽस्तीति प्रतिभाति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पादन्यासक्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै-
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् बाष्प(प्राप्य)वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥३९॥

व्याख्या - पादन्यासेत्यादि । तेभ्यः-तस्करेभ्यस्तात्-सङ्ग्रामाद्वा त्रायते-रक्षति तस्य सं० हे तत्र ! । रत्नानि-मणयः, छाया-शोभा, खानि-सुखानि, तैः चितो-व्याप्तः, तस्य सं० हे रत्नच्छायाखचित !। नो-ज्ञानं, खं-सुखं, तयोः पदं-स्थानं, तस्य सं० हे नखपद !। त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् वेश्याः-पण्यस्त्रियो मोक्ष्यन्ति । किं कृत्वा ? त्वत्तः वर्षावत् अग्राः-प्रधानाः बिन्दवो-वीर्यबिन्दवः, तान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दून् प्राप्य । किम्भूतान् ?, सुष्ठु खानि-इन्द्रियाणि येभ्यः तान् सुखान् । वेश्याः किम्भूताः ?, क्लान्तः 'रलयोरैक्यात्' क्रान्त आक्रान्तो वा हस्तो यासां ताः क्लान्तहस्ताः । कैः ? अमरैः । किम्भूतैः ? 'बवयोरैक्यात्', बलिभि-बलवद्भिः रूपवद्भिर्वा । चकारः पुनरर्थे । पुनः किम्भूतैः ?, लीलावध्वः-क्रीडास्त्रियः तासां ता-लक्ष्मीर्येषां तैः लीलावधूतैः । अथवा लीलया-क्रीडया अवधूतैः-अवधूतवेषधारिभिः । वेश्याः पुनः किं० ?, पादन्यासक्वणितरसनाः ॥३९॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं [2]तेजोविकसितजपापुष्परक्तं दधान ।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥४०॥

व्याख्या- पश्चादुच्चैरित्यादि । उच्चै-र्महत् भुजे-बाहौ ता-जयलक्ष्मीर्यस्य तस्य सं० हे उच्चैर्भुजत !। रार्द्रः - हे कामक्लिन्न !। अथवा आ-लक्ष्मीस्तया आ द्रीः(र्द्रः) तस्य सं० हे आर्द्र ! (आर्द्रः !)

"नागो मतङ्गजे सर्पे पुन्नागे नागकेसरे ।
क्रूराचारे नागदन्ते मस्तके सरसीरुहे ॥"

इत्यनेकार्थवाक्यात् नागवत्-सरसीरुहवत् कोमलत्वात् अजिनं-तनुत्वग् यस्य तस्य सं० हे नागाजिन !। त्वं पशुपते-र्महेशस्य तेजो-बलिं(बलं) द्युतिं हर-लक्षणया

१. ०न्यासैः मु. मेघ. ॥ २. **तेजः प्रतिनव०** मु. मेघ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृहाण । तेजः किम्भूतं?''रुः सूर्ये रक्षणेऽपि चे''ति **सुधाकलश**वाक्यम् । रुः-सूर्यस्तस्य वनं-गृहं तत् रुवनं । अथवा रोः-सूर्यस्य वनं-प्रवासो गगनभ्रमणरूपो यस्मात् तत् रुवनं । ''वनं प्रश्रवणे गेहे प्रवासेऽम्भसि कानने'' **इत्यनेकार्थः** । सन्ध्या(न्धा)यां-प्रतिज्ञात्यां(यां)-स्थित्यां वा भवं सान्ध्यम् । पुनः किं० ?, नवजपापुष्परक्तं तथैव । ज्ञेजो (तेजो) हि रक्तं वर्ण्यते ततोऽस्य जपापुष्पसाम्यम् । पुनः किं०?तिमीनां-मत्स्यानां, तथा तानां-तस्कराणां नयो-न्यायः-परस्पर-गिलनरूपः । यतः-

''धर्म्मः क्षोणीभृतां शिष्टपालनं दुष्टनिग्रहः ।
मात्स्यो न्यायोऽन्यथा नूनं भवेद्भुवनघस्मरः ॥''

तस्य नो-बन्धो यस्मात् तत् तिमितनयनम् । त्वं किं कुर्वाणः ? नृत्यारम्भे-नाट्यप्रारम्भे इच्छां-अभिलाषं दधानः-बिभ्राणः । पुनः त्वं किम्भूतः ?, शान्तः-उपशमं गतः उद्वेगो यस्मात् स शान्तोद्वेगः । पुनः किं०?, मण्डले-देशे लीन-आश्लिष्टः । तेजः किम्भूतं ? नाभि-श्रेष्ठं । त्वं किं० ? दृष्टभक्तिः-ज्ञातसेवः । का(क)या?, भवान्या-पार्वत्या; कोऽर्थः? असौ मम भक्तः इति पार्वत्या ज्ञातः । पुनः [किं]भूतः ? पः-प्रौढः । कुतः ? चात्-चन्द्रात् ॥४०॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे शूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयित्रीं (दर्शयोर्वीं)
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्त्रः(स्ताः) ॥४१॥

व्याख्या - गच्छन्तीनामित्यादि । योषितां-स्त्रीणां हे रमण !- हे प्रियतम !। किं कुर्वतीनां ?, गच्छन्तीनां-जानन्तीनां 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' । कां ? वसतिं-स्थानं गृहं वा । कस्य ?, इः-कामः तस्य एः । हे तत्र !-तस्करेभ्यो हे रक्षक !। सौदामिनी-विद्युत् तस्याः आ-लक्ष्मीः, तथा कनकं-सुवर्णं तस्य निकषः, तद्वत् स्निग्धः-अरूक्षः । अथवा अनयो[ः]पीतवर्णेन सदृशत्वात् स्निग्धो-मित्रं, तस्य सं० हे सौदामिन्याकनकनिकषस्निग्ध ! । अत्र लोके तमोभिः-पातकैः अदातृत्वादिभिः नक्तं-रात्रिं रात्रिध्वान्तयोरभेदात्(द्)ध्वान्तमित्यर्थः । असूचि-सूचितं । कोऽर्थः ? पातकैर्ध्वान्तमेव स्यादिति भावः । अतः त्वं याः-लक्ष्मीः प्रति गर्तादिक्षेपेन(ण) ऊर्व्वीं-भूमिं, ''अमानोना प्रतिषेधे'' इति वचनात्, अकारस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निषेधार्थत्वात्, अ-मा दशाय(दर्शय?)यतः ताः-लक्ष्म्यः विक्लवाः-विह्वलाः सन्ति। त्वं किम्भूतः ?, स्तनितः-शब्दस्तेन हेतुभूतेन, अथवा तेन युक्तं मुखं-वदनं, तेन राजते-शोभते सः स्तनितमुखरः । कुतः ? उत्सर्गात्-दानात् । कस्मिन् ?, नरपतिपथे-राजमार्गे । त्वं पुनः किं० ?, "मः शिवे विधौ चन्द्रे" इति वचनात्, मः-चन्द्रस्तस्य 'शसयोरैक्यात्' अश्मानि-उपलानि ते (तानि?) माश्मानि-चन्द्रोपलाः-चन्द्रकान्तमणय इत्यर्थः, तेषां भूः-भूमिर्विद्यते यस्य सः माश्मभूः । ता-जयलक्ष्मीः तस्य ऊ-रक्षणं याति-गच्छति ड प्रत्यये सम्बोधने हे तोय ! ॥४१॥

तां कस्यांचिद्भुवनबलभौ सुप्तपारापतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः ।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या ॥४२॥

इति श्रीमेघदूतकाव्ये प्रथमविश्रामः ॥

व्याख्या- तां कस्यामित्यादि । अ-परं ब्रह्म, चिद्-बुद्धिः, तयोर्भवनं-गृहं तस्य सं० हे अच्चिद्भवन !। 'बवयोरैक्यात्' बलं-रूपं तेजो वा तेन भाति स बलभः, तस्य सं० हे बलभ !। ऊ इत्यामन्त्रणे; सुप्तं-दीर्घनिद्रां गतं [प०]प्रौढं आरं-अरिसमूहो यस्य तस्य सं० हे सुप्तपार !। त्वं खलु- निश्चयेन सुहृदां-सज्जनानां मध्ये भवान्-चन्द्रो भवसि । भानि-नक्षत्राणि सन्त्यस्य स भवान् । "यत्र नान्यत् क्रियापदं तत्रास्तिभवतीत्यादिक्रियाऽनुक्ताऽपि प्रयोक्तव्ये"ति न्यायात् । त्वं किं कृत्वा ?, नीत्वा-आनीय कान्तां-रात्रिम् । कस्य ? सुखस्य - चिरविलसनात् यां-लक्ष्मीं नीत्वा-आदाय त्वं भवान् भवसि । त्वं किम्भूतः ?, खिन्ना विद्युत् रूपाधिक्यात् येभ्यः तानि खिन्नविद्युन्ति, ईदृशानि कलत्राणि यस्य स खिन्नविद्युत्कलत्रः । तां कामित्याह - या-रात्रिः सूर्ये-श्रीभानौ दृष्टेऽपि अध्वा एव शेषः-शेषनागः तं अध्वशेषं प्रतिहयेत्-न गच्छेत् । सूर्ये किम्भूते ? ई-तेजःश्रीः सैव अन्त[:]स्वरूपं यस्य, अथवा तया युक्तो अन्तः-समीपं यस्य स यन्तः, तस्मिन् यन्ते । अभि-भीरहितं यथा स्यात् तथा उपेताः-समीपं प्राप्ताः अर्था-धनानि यस्य तस्य सं० हे उपेतार्थ !। त्वं पुनः किंवि० ?, कृत्यं-करणीयं असति- 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' जानाति क्विपि स कृत्याः । वा समुच्चये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रात्रिः किं० ?, अपगताः ताः-तस्कराः यस्यां सा अपता-गततस्करा इत्यर्थः ॥४२॥

इति श्रीतपागच्छाधिराजभट्टारकश्रीहीरविजयसूरीश्वर[शिष्य]पण्डित श्रीबुद्धिसागरशिष्य पं. श्रीमानसागरकृतायां मेघदूतखण्डनायां नरेन्द्र-श्रीअकबरवर्णनः प्रथमो विश्रामः समाप्तः ॥

—x—

अथ [१]द्वितीयविश्रामं प्रारित्स्पु(प्सु)र्मङ्गलं चिकीर्षुरशान्तिहर-सा(शा)न्तिकरशान्तिदेवनामधेयपूर्वकं नृपवर्णनामाह-

तस्मिन्काले नयनसुभगंलिलं(नयन सलिलं) योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ।
प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥४३॥

व्याख्या-तस्मिन्निति । हे नयन !-लोचनतुल्य ! कासां ? योषितां । किम्भूतानां ? नखादिना कृत्य(त)व्रणानाम् । तस्करस्तस्याऽपत्यं तिः-चौरपुत्रः, तद्विषये अजो-रघुजः, तस्य सं० हे त्यज ! ई-लक्ष्मीं भुवं वा याति-गच्छति ड प्रत्यये सम्बोधनं हे ईय !। तस्मिन्काले-प्रभातलक्षणे प्रणयिभिः-भक्तजनैः शान्तिं-श्रीशान्तिदेवं प्रति स्नात्रार्थं सलिलं-जलं नेयं-नेतव्यं भवति । सलिलं किम्भूतं ? अः-कृष्णस्तस्य वर्त्त(र्त्म)-मार्गो यत्र । "स्थले विष्णुर्जले विष्णु"रिति वचनात् । तत् अवर्त्म । तस्मिन्कस्मिन्नित्याह- 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' यस्मिन्काले भानोः-श्रीसूर्यात् नलिनी-पद्मिनी-कमलं तदेव वदनं, तस्मात् कमलवदनात् अश्रुं स्वधवविरहनेत्राम्बु हर्तुं-अपनेतुं आशु-शीघ्रं प्राला-प्रकर्षेण समर्था भवति "अलपर्याप्तिभूषावारणेषु" इति पाठात्, प्रकर्षेण अलति-समर्था भवति अचि प्राला । अपि-पुनः त्वयि कररुधि-सूर्यतेजोरोधके । अतः आः स्मृतौ, सः सूर्यः अनल्पाभ्यसूयः-प्रचुरेर्ष्यावान् स्यात् । सूर्यः किं० ? आ समन्तात् वृत्तः-वृत्ताकारत्वात् स आवृत्तः ॥४३॥

१. एतादृशो विश्रामविभागो मूल-मेघदूते न दृश्यते इति ज्ञेयम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
[१]अच्छायात्मा प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्यान्-
मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि ॥४४॥

[व्याख्या-]गम्भीराया इत्यादि । हे गम्भीर !। कुतः ?, सरितः-नदीतोऽपि हे गम्भीर !। ते-तव पयसीव-दुग्ध इव प्रसन्ने-स्वस्थे चेतसि- चित्ते सति भवान् शं-सुखं लप्स्यते । भवान् किम्भूतः ? अयां अलक्ष्मीं अस्यति-क्षिपतीति क्विपि अयां (अयाः), पुनः किम्भूतः ?। छाया-राढा तस्याः आत्मा-जीवः-शरीरं वा, तदाधारत्वात् । अथवा अच्छः-निर्म्मलः अयो-भाग्यं, तथा आत्मा-जीवः(व) स्वभावः-शरीरं वा यस्य स अच्छायात्मा । पुनः किं० ?, प्रकृत्या-स्वभावेन शु(सु)भगः-मनोज्ञः स प्रकृतिसुभगः । प्र-प्रकृष्टा वयः-पक्षिणः शुक-सारिका-कपोताद्या यस्य तस्य सं० हे प्रवे ! । अथवा चेतसि किम्भूते ?, प्रवे-प्र-प्रकृष्टो वो-महेसो वो(?)यस्मिन् तत्प्रवं, तस्मिन् प्रवे महे[श्वर]त्वा(त्व)युक्ते इत्यर्थः, उज्ज्वलत्वात् । "वो महेस्वर" **इत्येकाक्षर**वचनात् । चटुलाः-चञ्चलाः सफरा-मत्स्यास्तेषां ऊ(उ)द्वर्त्तनं-कष्टान्निवर्त्तनं यस्मात् तस्य सं० हे चटुलसफरोद्वर्त्तत् ! । असौ-खड्गे आ-श्रीर्यस्य स अस्यः, तस्य सं० हे अस्य !। पुनस्ते-तव तस्मात्-नधैर्यात्-बुद्धिधैर्यात्"नो बुद्धौ ज्ञानबन्धयो"रिति **सुधाकलशः** । प्रेक्षन्ते-प्रकर्षेण इतस्ततः विलोकयन्तीत्येवंशीलाः प्रेक्षिणो ये ता-स्तस्कराः तान्-प्रेक्षितान् त्वं मोघीकर्तुं अर्हसि-निष्फलान् विधातुं योग्योऽसि । तस्मात् कस्मात्? 'यत्तदोर्नित्य-सम्बन्धात्' यत् नधैर्यं अस्व(अस्य)-कृष्णस्य कुं-शब्दं-भूमिं वा उदविशद्-उपविष्टवान् । कोऽर्थः ? अहं कृष्ण इति सम्बन्धं अधिष्ठितवान् इत्यर्थः । आः इति स्मृतौ । नधैर्यं किम्भूतं ? आ-लक्ष्मीस्तेजोरूपा तस्या निः-पतिः तत् आनि । इ इत्यामन्त्रणे ॥४४॥

अथ वर्षासु सरिन्मार्गेण जिगमिषुं नरेन्द्रं प्रति कविराह-हे सखे-हे मित्र !-

तस्या[:]किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
कृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ।

---

१. **छायात्मापि०** मु. मेघ० ॥

प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो पुलिन(विवृत)जघनां को विहातुं समर्थः ॥४५॥

व्याख्या - हे सखे !-हे मित्र ! इः-कामस्तस्य [१]वप्र-स्तातः कृष्णः, तस्य सं० हे इवप्र !- पराक्रमादिना हे कृष्ण ! । हे क !- सूर्य ! तेजोमयत्वात् त्वं तस्य-गुरोः चित्-ज्ञानं आप्तवान्-प्राप्तो भव । "यत्र नान्यत् क्रियापदं तत्राऽस्ति भवतीत्यादि क्रिया प्रयोज्ये"ति न्यायात् । त्वं किम्भूतः ?, मुक्तः-त्यक्तो रोधो-विरोधो येन सः मुक्तरोधः । चित्किम्भूतं ?, करे-हस्ते धृतं-पुस्तकग्रहणेन, पुस्तकस्य च ज्ञानमयत्वात् । पुनः किं० ? ई-लक्ष्मीः, 'शसयोरैक्यात्' रसा-भूमिः, तयोः खं-सुखं, "नास्ति ज्ञानसमं सुख"मित्युक्ते[ः], यस्मात् तत् ईरसाखम् । पुनः किं० ? अनीलं-निर्मलं । पुनः किं० ? अनितं-अप्राप्तं । कं?बं-कलहं, क्लेशवर्जितमित्यर्थः । पुनः किं० ? ते-तव थं-भयरक्षणं अर्थात् कर्मणामित्यर्थः । चित् पुनः किं० ?, भां-दीप्तिं अवति-रक्षतीत्येवंशीलं भावि । ते किम्भूतस्य ? प्रलम्बो-मानः पूजा यस्य सः, तस्य [प्र]लम्बमानस्य । किं कृत्वा ? हृत्वा-अपनीय, किं ?, प्रस्थानं-चलनं । किम्भूतं ? 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' यो गुरुः ज्ञाताऽपि-सकलशास्त्राणां वेत्ता सन्, किमित्याश्चर्ये, विपुलजघनां-स्त्रियं विहातुं-त्यक्तुं समर्थो भवति । किम्भूतः ? न विद्यते स्वादः-संसारसम्बन्धी यस्य सः अस्वादः । गुरुः किंवि० ? कः-वायुतुल्यः अप्रतिबद्धत्वात् । आ इति स्मृतौ ॥४५॥

त्वन्निस्य(ष्य)न्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
श्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥४६॥

व्याख्या- हे अरन्ध्र ! - अच्छिद्र !। ध्वनौ-शब्दे ता-लक्ष्मीर्यस्य, तस्य सं० हे ध्वनित !। उः-शम्भुः तद्वत् पाति-रक्षति तस्य सम्बोधनं हे उप ! हे देव ! -हे नरेन्द्र !। ते-तव पूः-पुरं सैव वो-महेशः तं पूर्वं; अशीतो-गुरुः "नीचैः स्वे(स्वै)राऽल्पनीचेष्वि"**त्यनेकार्थ**वचनात्, नीचैः-स्वैरं वास्यति-प्राप्स्यति । "वाक् सुखाप्तिगतिसेवासु स्याद्वाल्ग् (गमन)हिंसयो"रिति धातुपाठात् । न विद्यते

१. 'वप्र' शब्दस्तातवाचकत्वेन प्रयुक्तोऽत्र । वप्रः-बप्रः-बप्पः-बापः इति यावत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शी-निद्रा-हिंसा वा यत्र सा अशीः, ईदृक् ता-चारित्रलक्ष्मीर्यस्य सः अशीतः-हिंसानिद्राद्रव्यरहित इति । समर्थविशेषणात् गुरुरिति गम्यते । अशीतः किम्भूतः? तुभ्यं-त्वदर्थं नितरां स्यन्दते च(चे)ति सः त्वन्निस्यन्दः । उत्स्वसिता-रोमाञ्चिता वसुधा भूमि[:], "तत्स्थे तद्व्यपदेशात्" जगद् वा यस्मात् स उत्स्वसितवसुधः । आ-समन्तात् गन्धस्य-सुरभेर्यः सम्पर्क्कः-संयोगस्तेन रम्यः-मनोज्ञः, एषां पदत्रयाणां विशेषेण कर्मधारयः । पुनः किम्भूतः ?, परिणमयिता-कर्मणां परिपाककर्त्ता इत्यर्थः । ते किम्भूतस्य ? जिगमिषोः- 'गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात्' ज्ञातुमिच्छोः । किं ? आयुः-जीवितकालः । चकारः पुनरर्थे । ततः श्रोत-इन्द्रियं 'जातेरैक्यात्' श्रोतांसीत्यर्थः । केषां ?, काननोदुम्बराणां । काननाः-काननोद्भवाः, उदुम्बराः-वृक्षविशेषास्तेषां, अथवा कस्य-सुखस्य आननं-मुखं, तस्य सं० हे कानन ! शेषं तथैव । पूर्वं किम्भूतं ? पुरमहेशं । अत्र पुरस्य महेशेन साम्यं जने स्मितकारित्वात् परैरक्षोभ्यत्वाच्च । पूर्वं किं० ? गिरिं-पूज्यं । पुनः किं० ?, सुभगं-मनोहरं । कैः ? दन्तिभिः-हस्तिभिः । 'वष्टि भागुरिरल्लोप"मित्यादिना अपेरकारलोपः । अपि पुनः गुरुः किम्भूतः ? ईयमानः अर्थात् सद्भिरित्यर्थः ॥४६॥

[तत्र स्कन्दं]नियतवसतिं पुष्पमेघीकु(कृ)तात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रे[1] ।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूनां
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥४७॥

व्याख्या - तत्र स्कन्दमित्यादि । तेभ्यः-तस्करेभ्यः त्रायते-रक्षति डप्रत्यये हे तत्र !-तस्करभयवारकत्वात् हे नृप !! पुष्पं-धनदविमानं, तस्मिन् तस्य वा आ-लक्ष्मीर्यस्य स पुष्फाः(ष्पाः) विशेषणबलाद् धनदस्तस्य सं० हे पुष्फाः (ष्पाः)!- हे धनद !! कैः ? सारैः-धनैः । हे व्योमगङ्गाजल !-निर्मलत्वात् आकाशगङ्गाजलतुल्य !! हे हुतवह !-हे वह्ने ! कस्य हेतो[:]? वासवीनां-इन्द्रसम्बन्धिनीनामपि चमूनां रक्षाहेतोः-भस्मकारणस्य । आ-लक्ष्मी[:]तया आर्द्रः-सरसः, तस्य सं० हे आर्द्र !! ए इत्यामन्त्रणे । चित्रत्वात् विसर्गाऽभावः । नवः-स्तोत्रं तेन शशिभृतो-महेशः अचिन्त्यशक्तित्वात् स म(न)वशशिभृतः, तस्य सम्बो०

१. **जलार्द्रैः**० मु. मेघ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे नवशशिभृत ! । हे अ !-हे कृष्ण ! भवान् तत्-तेजः स्नपयतु । तत्तेजः । "स्कन्दं गतिशे(शो)षणयो'रिति धातुः । स तरस्कन्दिन् (?) । शोषयत् । कां ? नियतवसतिं-नियता-मनुष्यलोके सततं भवतीत्यादिप्रकारेण निश्चिता या वसतिः-रात्रिः तं तथैव । 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' तत् किमित्याह-यत् तेजः मुखे-वक्त्रे, हि-निश्चितं, संभृतं-सम्यक् धृतं भवति । भवति क्रियापदे हेतुस्तथैव । तेजः किम्भूतं ? अत्यादित्यं-सुगमम् । भवान् किं० ?, पुष्पाणां मेघोऽस्याऽस्तीति पुष्पमेघी । तेजः किं० ? ईः-तेजःश्री[ः]तया कृतः-निःपादितः निष्पन्नो वा आत्मा-सूर्यो येन तत् ईकृतात्मः । आ इति सम्बोधनेऽव्ययः ॥४९॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापिकर्णे करोति ।
धौतापाङ्गं हरशुसि(शशि)रुचा पावकेस्तंमयूरं
पश्चादप्रि(द्रि)ग्रहणगुरुभिग(र्ग)र्जितैन(तैर्न)र्त्तयेथाः ॥४८॥

व्याख्या ॥ ज्योतिः-तेजः, तेन लेखः-देवः, तस्य सं० हे ज्योतिर्लेख !। आ-सुवर्णादिलक्ष्मीः तया, समन्ताद्वा 'बवयोरैक्यात्' बलिः-पूजा यस्य । अथवा बलि-र्बलिर्नृ(नृ)पतुल्यः सः, तस्य सं० हे बले ! इ इत्यामन्त्रणे । कुवलयदलानि प्राप्नुतः इत्येवंशीलौ-कोमलत्वात् कर्णौ यस्य तस्य सं० हे कुवलयदल-प्रापिकर्णा(र्ण) ! ई इति संनिधानार्थे । हे पावक !-पवित्रीकारक ! "अद्रिस्तु पर्वते सूर्ये सा(शा)खिनी"**त्यनेकार्थ**वाक्यात् अद्रिग्रहः-सूर्यग्रहः तद्वत्, "णस्तु फले ज्ञाने" **इत्येकाक्षर**वचनात् भास्करत्वात् णो-ज्ञानं यस्य तस्य सं० हे अद्रिग्रहण !-हे श्रीगुरो !। तं श्रीनरेन्द्रं-मयूरं त्वं नर्त्तय(ये)था[ः]। कैः ? जिनवाग्-जलदध्वानयोरभेदोपचारात् गर्जितैः-जिनवाग्भिः शब्दैर्वा । किं० गर्जितैः ?, गुरुभिः-महद्भिः । त्वं किम्भूतः ? इं (इः)-कामः रूपवत्त्वात् । तं किं० ?, धौतं-क्षालितं, तथा आं-लक्ष्मीं पाति डप्रत्यये आपं, ईदृशं अङ्गं-देहं यस्य स तं धौतापाङ्गं । कया ? हरशशिरुचा हरो-रुद्रः, शशी-चन्द्रः, तद्वत् तयोर्वा रुग्-रोचिः तया तथैव । त्वं किं० ? पः-प्रौढः कुतः , चात्-चन्द्रात् निर्म्मलत्वात् । तं कं ? यस्य नरेन्द्रस्य भवानी-पार्वती पुत्रप्रेम्णा बर्हं-परिवारं करोति, "बर्हः पर्णे परिवारे कलापे" **इत्यनेकार्थः** । बर्हं किम्भूतं ? "गलिर्दुष्टवृषः शक्तोऽप्यधूर्वह" इति **नाममाला**वाक्यात् गलयो-दुष्टवृषभाः शक्ता अपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशक्तिमन्तः स्यु[ः] तादृशाः ताः-तस्करा यस्मात् तं गलितम् ॥४८॥

आराध्यैनं शरवणभुवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ।
व्यालम्बेथा[ः]सुरभितनयालंभजां मानयिष्यन्
श्रोतोमूर्त्त्या भुविपरिणतां रन्तिदेवस्य कीर्त्तिम् ॥४९॥

व्याख्या - हे आराध्य !-हे पूज्य ! सुरभितः-सुगन्धीकृतः नयो-न्यांयो येन तस्य सं० हे सुरभितनय ! । अथवा सुरभिर्गौः (गौः) तस्याः तनयः-पुत्रः वृषभस्तस्य सं० हे सुरभितनय ! धौरेयत्वात् । विलम्बं कुर्याः-क्षणमात्रं तत्र स्थेयमिति भावः । हे गुरो ! त्वं रनं (नर)देवं-नृपं ष्य(प्र ?)ति व्यालम्बेथाः । त्वं कुतः ? 'डलयोरैक्यात्' जडानां-मूढानां कणो-अल्पमात्रं यत् भयं, असौ नरेन्द्रस्याग्रे क्षणमात्रं न स्थास्यतीत्यादिरूपा भीतिः तस्मात् जलकणभयात् । त्वं किं० ?, उल्लङ्घिनाध्वा, सुगमम् । पुनः किं० त्वं ? मुक्तः-त्यक्तः मार्गोऽन्वेषणं-पन्था वा येन सः मुक्तमार्गः, कस्य ? एः-कामस्य । पुनः त्वं रन्तिदेवस्य कृस्तस्य (?) कीर्त्ति(र्त्ति) अलं-अत्यर्थं भज-सेवस्व । कषा(या)?, श्रोतोमूर्त्त्या श्रोतांसि-इन्द्रियाणि तैः प्रधानाः मूर्त्तिः-शरीरं तया । कोऽर्थः ? पञ्चेन्द्रिय-प्रधानशरीरेण कीर्त्ति(र्त्ति) प्राप्नुहीत्यर्थः । कीर्त्ति किम्भूतां ? पञ्चेन्द्रियप्रधानशरीरेण पृथिव्यां परिणतां-विस्तीर्णाम् । त्वं किं कुर्वन् ?, मामां(?) आं-श्रियं आनयिष्यन् । देवं किम्भूतं ? शरवणभुवं-महातेजस्वित्वात् स्कन्दतुल्यमित्यर्थः ॥४९॥

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो दूरमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥५०॥

व्याख्या ॥ स्थूलं मध्यं यस्य अथवा "मध्यं न्याय्येऽवलग्नेन्तरि"ति वचनात् स्थूलं-पीनं मध्यं-न्याय्यं-न्यायो यस्य सः स्थूलमध्यः, तस्य सम्बो० हे स्थूलमध्य !॥ भुवः-पृथिव्यां हे इन्द्र !-हे शक्र !॥ त्वयि तस्या-लक्ष्म्याः प्रवाहं-लोकरूढ्या दानं दातुं अवनते-नीचे भूते सति दृष्टीः-लोचनानि आवर्ज्य-सम्यग् संस्पृश्य, गगनगतयो देवाः, इवोत्प्रेक्षायां, जलं-पानीयं दूरं-दूरे एव नत्वभ्यर्णं प्रेक्षिष्यन्ते-द्रक्ष्यन्ति । कोऽर्थः ? त्वया यदा दक्षिणा याचकेभ्यो दत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदाऽभ्यर्णवर्त्तिसर:सिन्धुकूपादिजलं सकलं व्ययितं दूरे एव जलं स्थितमिति भाव: । भूरिदानं च दत्तमिति तात्पर्यार्थ: । तस्या: कस्या: ? 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' या आ-लक्ष्मी: सिन्धो:-समुद्रात् तनुं-देहं अवे: प्राप्त्यर्थत्वात् आव-प्राप । तनु(नुं) किंवि०?, आत्-कृष्णात् अपि पृथुं-महत्तरं-गुरुतरं । पुन: किंवि० ? नीलं-नीलमणिरूपं । पुन: किंवि० ?, एकं श्रेष्ठं । पुन: किंवि० ?, मुक्तागुणं-मुक्ता:-त्यक्ता: अगुणा: अपगुणा येन स मुक्तागुण: तं मुक्तागुणम् । या किंवि० ? दूरात् भातीति डप्रत्यये दूरभा । त्वयि किं० ? शार्ङ्गिण:-कृष्णस्य वर्णो-यश:-स्तुतिर्वा तस्य चौर:-अपहारक: स: तस्मिन् वर्णचौरे-कृष्णयश:सर्वस्वापहारके इत्यर्थ: ॥५०॥

तामुत्तीर्य व्रजपरिचितभ्रूलता विभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम् ।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥५१॥

व्याख्या ॥ भ्रूलताया विभ्रमो-भ्रूसमुद्भवो विकारविशेषो विद्यते यासां ता: भ्रूलताविभ्रमा:, विशेषणसामर्थ्यात् स्त्रिय:, तासां भ्रूलताविभ्रमाणां-स्त्रीणां व्रजो (व्रज:)-समूह:, तेन परि-समन्तात् चितो-व्याप्तो य: तस्य सम्बो० हे व्रजपरिचित !। भूलताविभ्रमाणां किं० ?, प्रकर्षेण भातीति प्रभा, प्रकृष्टा वा प्रभा यासां ता: प्रभा:, तासां प्रभाणाम् । आत्-कृष्णात् उत्-ऊर्द्ध्वं प्राबल्येन वा क्षेप:-उपमादिभि: आधिक्यकरणं यस्य तस्य सं० हे उत्क्षेप !। पा-प्रौढा क्ष्मा-भूमिर्यस्य तस्य सम्बो० हे पक्ष्म !। परि-सामस्त्येन विलसत्-देदीप्यमान्नं(नं) कृष्णवत्-विष्णुवत् सारं-बलं-धनं वा यस्य तस्य सं० [हे]परिविलसत्कृष्णसार ! । नुं-स्तुतिं गच्छति स नुग:, तस्य सम्बो० हे नुग ! । मधु-मद्यं कुर्वन्तीति मधुकरा:-कल्यपाला:, तेषां श्रियं-लक्ष्मीं-शोभां वा मुष्णाति-अपहरति य: स मधुकरश्रीमुष: । त्वया मद्यस्य करणं पानं च निषिद्धं, ते तु तत् कुर्वन्ति । ततस्तेषां शिक्षार्थं सर्वस्वापहारक: । तस्य सम्बो० हे मधुकरश्रीमुष ! । आम:-**श्रीआमनृप: श्रीबप्पभट्टिसूरि**पादानां परमभक्त:, तथा त्वमपि **श्रीहीरविजय-सूरि**पादानां ततु(तत्तु)ल्य:, तत्सम्बो० हे आम ! । दै:-कलत्रै:, "शं श्रेयसि सुखेऽव्यय" इति **सुधाकलश**वचनात्, श:-श्रेयान् उत्कृष्ट:, तत्सम्बो० हे दश !।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र कौ-पृथिव्यां, कुं-पृथिवीं त्व(त्वं) उ-निश्चयेन अपाः-रक्षितवान्। किं कृत्वा ? उत्तीर्य-अवतीर्य । कां ? तां-पृथिवीं । त्वं किं कुर्वन् ?, आत्मैव बिम्बं आत्मानमित्यर्थः अपात्रं पात्रं सर्वगुणभाजनं करोतीति शतरि पात्रीकुर्व्वन्। कस्मिन् ? "पुरं शरीरे नगरे गृहपाटलिपुत्रयोः" **इत्यनेकार्थ**वचनात् पुरै-गृहैः तथा वधूभिः ऊनो-रहितो यः सः पुरवधूनः-अनगारेश्वर इत्यर्थः, तस्मिन् पुरवधूने, सप्तम्या[:] सामीप्या र्थत्वात् अनगारेश्वरसमीपे इत्यर्थः पुरवधूने किंवि० ?, ऊहं-धीगुणविशेषं लान्तीति डप्रत्यये ऊहलाः-विचारज्ञाः, तेषां ऊहलानां-विचारज्ञानां मध्ये दक्षे-निपुणे । उ इत्यामन्त्रणेऽव्ययः ॥५१॥

ब्रह्मावर्त्तं जनपदमथ च्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।
राजन्यानां सितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यषिच(ञ्च)न् मुखानि ॥५२॥

व्याख्या- शिताः- तीक्ष्णाः शराः-बाणाः यस्य सः शितशरः, तस्य सम्बो० हे शितशर ! । केषां मध्ये ? राजन्यानां-क्षक्षि(त्रि)याणां-राजपुत्राणां वा मध्ये इत्यर्थः । त्वं, "दाराः क्षेत्रं वधूर्भार्येति" वचनात्, क्षेत्रं-भार्यां तद्भजेथाः तत् सेवेथाः । 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' यत्क्षेत्रं आ-लक्ष्मीः तस्या धारापाताः, अत्र लक्ष्मीशब्देन वसु ग्राह्यं, ततः तैः आधारापातैः-वसुधारापातैः इत्यर्थः, गां-पृथ्वीं त्वमिव अभ्यषिञ्चत् । पुनः यत्र क्षेत्रे मुखानि-वक्त्राणि कमलानि-कमलतुल्यानि वर्त्तन्ते । अत्र बहुत्वं सर्वशरीरावयवेषु पूज्यत्वात् मुखस्य । कोऽर्थः ? यत्क्षेत्रं दानैर्वर्षावद्वर्षति यस्य च मुखं कमलतुल्यं यच्च कौरवं-कुर्व्वादिशुद्धवंशोद्भवं तत्क्षेत्रं त्वं भजेथा इति भावः । आधारापातैः किम्भूतैः ? शतैः-शतसंख्यैः । क्षेत्रं किंवि० ?, ब्रह्मावर्त्तं, ब्रह्म-ब्रह्मचर्यं तस्यैव आवर्त्तः-चिन्तनं-आवर्त्तनं यत्र यस्य वा तद् ब्रह्मावर्त्तं । "आवर्त्तः पयसां भ्रमे आवर्त्तने चिन्तने चे"**त्यनेकार्थः** । पुनः किंवि० ?, क्षत्राणि-क्षत्रियान् प्राति-पूरयति डप्रत्यये क्षत्रप्रं, ईदृशं यत् धनं-द्रव्यं तस्य पिशुनं-सूचकं प्रशस्तलक्षणोपेतत्वात् यत् तत् क्षत्रप्रधनपिशुनम् । पुनः किंवि० ? कौरवं-कुरुवंशोद्भवम् । त्वं किं कुर्वाणः ? गाहमानः-विगाहमानः कं ? जनपदं-देशं 'जातै(ते)रैक्यात्' जनपदानित्यर्थः । कया ? छायया-शोभया-राजरीत्या न तु लुण्टनादिप्रकारैः । त्वं किंवि० ?, अं-कृष्णं भाविजिनं चेतसि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धत्ते इति डप्रत्यये अधः । पुनः किंवि० ? 'डलयोरैक्यात्' ल-इन्द्रः, तस्य स्त्री ली, तां वाति-गच्छति ड प्रत्यये लीवः-इन्द्रः, तद्वत् धन्व-धनुर्यस्य स लीवधन्वा । अथवा क्विंचि (क्वचित्) **गाण्डीवस्थाने गांजीव-शब्दो**ऽप्यस्ति, ततः जीवधन्वा-जीववत्-आत्मवत् वल्लभत्वात् धन्व-धनुर्यस्य स जीवधन्वा ॥५२॥

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कं
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गलीयाः सिषेवे ।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्यसारस्वतीना-
मन्तः शुद्धस्त्वमिव भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥५३॥

व्याख्या ॥ अभिमत-इष्टः रसः-शान्ताभिधो यस्य यत्र वा स अभिमतरसः तस्य सम्बो० हे अभिमतरस !। रेवत्यां-रेवतीनक्षत्रे उपलक्षणत्वात् पुष्यादौ लोचनं-लोचो यस्य स रेवतीलोचनः तत्सम्बो० हे रेवतीलोचन !। हे सौम्य !- हे अक्रूर !। स नरेन्द्रः त्वं "वः पश्चिमदिगीशे स्यादौपम्ये पुनरव्यय"-मिति[व]चनात् त्वंवत्-त्वमिव स नरेन्द्रः अन्तःशुद्धो भविता-भविष्यति। किं कृत्वा ? हालां-सुरां हित्वा-सुरापानं त्यक्त्वा। स किंवि० ?, ऋ-भूमिः, णो-ज्ञानं, तथा "मात्रा-परिच्छदे अक्षरावयवे द्रव्ये" **इत्यनेकार्थ**वचनात् मात्रा-परिच्छदः-पुत्रादिपरिवारत्। समाहारद्वन्द्वे ऋणमात्रं, तेन ऋणमात्रेण, कोऽर्थः ? भूम्या ज्ञानेन परिच्छदेन च कृष्णः-कृष्णतुल्यः इत्यर्थः । सः कः ? 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्' यो नरेन्द्रः, इवोत्प्रेक्षायां, बन्धुप्रीत्येव-समानधर्मत्वात् बन्धुस्नेहेनेव अं-कृष्णं-भावितीर्थकरं सिषेवे-सेवितवान् । किं कृत्वा ?, तासां अपां-पानीयानां अभिगमं-संस्पर्शं-आचमनं वा कृत्वा-विधाय-शुचीभूयेत्यर्थः । तासां कासां ?, 'यत्तदोर्नित्य-सम्बन्धात्' या आपः लाङ्गलीयाः विद्यन्ते। ल-इन्द्रः, तस्य अङ्गं-वपुः, तल्लीयते-आश्लिष्यते यः स लाङ्गलीः-मेघः । इन्द्रस्य मेघवाहनत्वात् वपुषि मेघा लीनाः विद्यन्ते इति रूढिः । ततस्तत्प्रभवा इमा लाङ्गलीया-मेघप्रभवा आपः इत्यर्थः । अपां किंवि० ? सारस्वतीनां-सरस्वत्यां नद्यां भवाः सारस्वत्यः, तासां सारस्वतीनाम्। आं किंवि० ? "अः कृष्णे विनतासूना"विति **महीप**वचनात् अस्य- गु(ग)रुडस्य अङ्कं-चिह्नं यस्य स आङ्कः, तं अङ्क(आङ्कं)-गरुडध्वजमित्यर्थः । स किंवि० ? मरविमुखः-मश्चन्द्रस्तद्वत् सौम्यं, तथा रविः-सूर्यः तद्वद् भास्वरं, मुखं-आस्यं यस्य [स] मरविमुखः ॥५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ताम् ॥५४॥ व्याख्या ॥(?)

इति श्रीप्रथमस्वर्ग संपूर्णम् (सर्गः संपूर्णः) ॥

★★★

परिशिष्ट

पद्यतुलना-तालिका

श्लोकाङ्कः मेघदूतखण्डना-प्रतिसत्कश्लोकाः		मुद्रित-प्रतिसत्कश्लोकाः । (वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर सम्पादित- निर्णयसागरीय ई. १९१८ वर्षे प्रकाशित-सटीक पुस्तकसत्क पाठोऽत्र लब्धः) ।
१	कश्चित्कान्ता	√
२	तस्मिन्नद्रौ	√
३	तस्य स्थित्वा	√
४	प्रत्यासन्ने	√
५	धूमज्योतिः	√
६	जातं वंशे	√
७	सन्तप्तानां	√
८	त्वामारूढ	√
९	मन्दं मन्दं	√
१०	तां चावश्यं	√
११	कर्तुं यच्च	√
१२	आपृच्छस्व	√
१३	मार्गं तावत्	√
१४	अद्रेः शृङ्गं	√

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५	रत्नच्छाया	√
१६	त्वय्यायत्तं	√
१७	त्वामासार	√
१८	अध्वक्लान्तं	(१८-१९ मध्ये) क्षेपकः ।
१९	छन्नोपान्तः	१८
२०	स्थित्वा तस्मिन्	१९
२१	तस्यास्तिक्तै	२०
२२	नीपं दृष्ट्वा	२१
२३	अम्भोबिन्दु	(२१-२२ मध्ये) क्षेपकः
२४	उत्पश्यामि	२२
२५	पाण्डुच्छायो	२३
२६	तेषां दिक्षु	२४
२७	नीचैराख्यं	२५
२८	विश्रान्तः सन्	२६
२९	वक्रः पन्थाः	२७
३०	वीचिक्षोभ	२८
३१	वेणीभूत	२९
३२	प्राप्यावन्ती	३०
३३	दीर्घीकुर्वन्	३१
३४	हारास्तारां	(३१-३२ मध्ये) प्रक्षेपः ।
३५	प्रद्योतस्य	,, ,, ,,
३६	-	,, ,, ,, - पत्रश्यामा ।
३७	-	जालोद्गीर्णै० ३२ । भर्तुः कण्ठ० ३३ ।
३८	अप्यन्यस्मिन्	३४
३९	पादन्यास	३५
४०	पश्चादुच्चै	३६
४१	गच्छन्तीनां	३७
४२	तां कस्यांचिद्	३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३	तस्मिन् काले	३९
४४	गम्भीरायाः	४०
४५	तस्याः किञ्चित्	४१
४६	त्वन्निष्यन्दो	४२
४७	तत्र स्कन्दं	४३
४८	ज्योतिर्लेखा	४४
४९	आराध्यैनं	४५
५०	त्वय्यादातुं	४६
५१	तामुत्तीर्य	४७
५२	ब्रह्मावर्त्तं	४८
५३	हित्वा हाला	४९
५४	तस्माद्गच्छे	५०

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टूंक नोंध

१. एक साध्वी-प्रतिमा

श्रीभद्रेश्वर तीर्थ ए कच्छनुं पुरातन अने भव्य जैन तीर्थ छे. तेनुं सदीओ-जूनुं विशाळ जिनालय ई. २००१ ना २६ जान्युआरीना भीषण भूकम्पने कारणे हानिग्रस्त थतां हाल तेना स्थाने पायाथी नूतन जिनालय बंधाई रह्युं छे. आ माटेना पायानुं खोदकाम करतां नीचेथी केटलाक खण्डित प्रतिमा-अवशेषो मळ्या छे, जेमां मुख्यत्वे विधर्मी आक्रमणकारोए खण्डित करेली जैन मूर्तिओ ज छे.

आ मूर्तिओ महदंशे लेख-विहोणी छे, छतां जे बे-त्रण प्रतिमानी पलांठी पर थोडाक अक्षरो जोवा मळे छे, ते परथी आ अवशेषो १४ मी शताब्दीना होवानुं मालूम पडे छे.

आ खण्डावशेषोमां एक साध्वीजीनी खण्डित प्रतिमा पण छे, **(तेनी छबी आ अंकना मुखपृष्ठ पर मूकी छे)**. आ प्रतिमानी मुखाकृति कापी नाखेली हालतमां छे. डाबो हाथ तथा पग पण कपायेला छे. मस्तकना पृष्ठ भागे रजोहरण लटकतो स्पष्ट देखाय छे, जेना आधारे आ कोई गृहस्थ स्त्रीनी नहि, पण जैन साध्वीनी मूर्ति होवानुं सिद्ध थाय छे. साध्वीजी पाटला पर बेठेला छे. तेमना बे पडखे बे स्त्रीओ, सम्भवतः साध्वी-शिष्याओ, बेठी छे. प्रतिमानी पलांठीमां लखेला अक्षरो छे: **"राज्ञी राजमत"**. राजमत ए राजीमतीनुं देशी रूप छे, ते उपरथी प्रसिद्ध 'नेम-राजुल' वाळां राजमतीनी आ मूर्ति होवानी कल्पना थाय खरी. परन्तु तेनी साथे जोडेल 'राज्ञी' शब्द उपर विचार करतां लागे छे के आ कोई राजा के ठाकोरनी राणी होय- मध्यकाळमां, अने तेणे दीक्षा लीधी होय पण दीक्षा पछी ते 'राज्ञी' तरीके ज ओळखाती रही होय, ए वधु शक्य छे. आ सिवाय बीजा अक्षरो वंचाता नथी, अथवा खरेखर अन्य कोई अक्षरो होवानुं कोई निशान ज नथी, तेथी आटला ज अक्षरो प्रतिमा पर छे, तेम लागे छे. जे होय ते, पण मध्यकाळमां साध्वीजीनी प्रतिमाओनी स्थापना थती हती, तेनां जे गण्यागांठ्यां उदाहरणो उपलब्ध छे, तेमां आ प्रतिमाथी एक महत्त्वपूर्ण दाखलो उमेरायो छे.

-शी.

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टूंक नोंध

२. भुवनहिताचार्य

म. विनयसागर

अनुसन्धान के २५ वें अंक में भुवनहिताचार्य कृत चतुर्विंशतिजिनस्तवनम् (पृष्ठ ५३ से ५८ तक) प्रकाशित हुआ था। उस लेख में भुवनहिताचार्य का जो परिचय प्राप्त है वह एक ही पैरेग्राफ में दिया गया था।

खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह का सम्पादन करते हुए श्री भुवनहिताचार्य से सम्बन्धित एक शिलालेख प्रशस्ति दृष्टिगोचर हुई। यह प्रशस्ति राजगृह नगर में पार्श्वनाथ मन्दिर में विद्यमान है। विविध छन्दों में निर्मित प्रशस्ति वैदुष्यपूर्ण है और ३८ पद्यों में है जो ३३ पंक्तियों में टंकित हुई है। इस प्रशस्ति का सारांश निम्न है-

विपुलाचल पर विराजमान पार्श्वनाथ भगवान् वाञ्छित फल प्रदान करें (१)। भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान कल्याण जहाँ हुए हैं और चक्रवर्ती जय, बलदेव राम, वासुदेव लक्ष्मण, प्रतिवासुदेव जरासन्ध, महाराजा श्रेणिक, अभयकुमार और धन्य शालिभद्र आदि से जो भूमि पवित्रित है। विपुलाचल पर और वैभारगिरि पर जिनेन्द्र मन्दिर हैं (२-३)

उस राजगृह नगर पर सुरताण पेरोजशाही का शासन चल रहा है। उनके आदेश से मगध देश पर मलिकवय नामक शासक है और उसी का सेवक सहणासदूरदीन की सहायता से मंत्रीदलीय ठक्कुर वच्छराज और ठक्कुर देवराज ने यह पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया है (५)।

मन्त्रिदलीय वंश में मुख्य पुरुष सहजपाल हुए। उनकी विस्तृत वंश परम्परा दी गई है। पद्य ६ से १३॥ उसी वंश-परम्परा में ठक्कुर मण्डन के पुत्र ठक्कुर वच्छराज और देवराज ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया।

इस मन्दिर के प्रतिष्ठापक थे - भगवान् महावीर की परम्परा में सुधर्म गणधर, वज्रस्वामी आदि पूर्वधर हुए। उसी वंश-परम्परा में वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि, उनके शिष्य जिनचन्द्रसूरि ने सम्वेगरंगशाला ग्रन्थ का निर्माण किया। उनके पट्टधर अभयदेवसूरिने स्तम्भन पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रकट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की और नवांगों पर टीका लिखी । उनके क्रमशः पट्टधर जिनवल्लभसूरि, योगेन्द्र चूडामणि अम्बिका प्रदत्त युगप्रधान पदधारक जिनदत्तसूरि, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि, वादी एवं वागीश्वर जिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनप्रबोधसूरि, जिनचन्द्रसूरि, शत्रुञ्जय तीर्थ पर मानतुंग विहार के संस्थापक जिनकुशलसूरि, जिनपद्मसूरि, जिनलब्धिसूरि और उनके पट्टधर जिनचन्द्रसूरि हुए । उन श्री जिनचन्द्रसूरि के उपदेश से विहारपुर नगर में रहने वाले वच्छराज और देवराज ने समस्त परिवार समस्त सहित यह मन्दिर बनवाया (१४-३२) ।

भुवनहितोपाध्याय के दीक्षादायक गुरु थे - जिनचन्द्रसूरि और शास्त्रों के अध्ययन कराने वाले थे- जिनलब्धिसूरि । उन भुवनहितोपाध्याय ने गच्छनायक के आदेशानुसार विक्रम सम्वत् १४१२ आषाढ वद ६ के दिन इस मन्दिर की प्रतिष्ठा की । यह प्रशस्ति भी भुवनहितोपाध्यायने लिखी है । इस प्रशस्ति को उत्कीर्ण करने वाले ठक्कुर माल्हा के पुत्र सुश्रावक वीधा थे (३३-३८) । प्रतिष्ठा के समय भुवनहितोपाध्याय के साथ थे - हरिप्रभगणि, मोदमूर्तिगणि, हर्षमूर्तिगणि और पुण्यप्रधानगणि आदि भुवनहितोपाध्याय ने पूर्वदेशस्थ महातीर्थों की यात्रा की थी ।

यह प्रशस्ति लेख महोपाध्याय विनयसागर सम्पादित खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह लेखांक ८६ पृष्ठ २२-२३ पर प्रकाशित है ।

C/o. प्राकृत भारती
१३ A. मेन मालवीय नगर
जयपुर ३०२०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. भायाणीनुं मध्यकालीन साहित्य-अभ्यासक्षेत्रे प्रधान

हसु याज्ञिक

डॉ. हरिवल्लभ भायाणीनुं प्रदान संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश अने जूनी गुजराती ए चारेय भारतीय आर्यभाषाओना अभ्यासक्षेत्रे छे. अर्वाचीन गुजरातीनो जन्म अने तेनी साहित्य परम्परानो विकास आ चार भाषाओना क्रममां थयो छे. आ भाषाओनां ज्ञान-परिशीलन तथा भाषाशास्त्र, बोलीविज्ञान, व्युत्पत्ति अने व्याकरणना अधिकारपूर्ण अभ्यास, पूर्व अने पश्चिमनां मीमांसा अने आधुनिक प्रवाहोनी पण पूरी जाणकारी अने आवा प्राचीन-मध्यकालीन कृतिओनी प्रजाजीवनसंलग्न परम्परानां पण प्रत्यक्ष ज्ञान-अनुभवने कारणे, डॉ. भायाणी आ विशिष्ट शाखाना संशोधन-सम्पादनमां गुजरात उपरांत राष्ट्रीय अने आन्तरराष्ट्रीय कक्षाओ मूल्यवान प्रदान करी शक्या छे.

अहीं आवा प्रतिभाशाळी रसमर्मज्ञ पण्डित अने अभ्यासी एवा डॉ. भायाणीना मध्यकालीन साहित्यना अभ्यासना क्षेत्रमां, ओमणे करेलां कार्योने तथा विशिष्ट प्रदानने विलोकवानो उपक्रम छे. आ प्रकारना एमनो अभ्यास कृतिसम्पादन तथा सम्पादित कृतिओनां संशोधन, अर्थदर्शन, भाषान्तर अने आस्वादन एम मुख्य बे वर्गमां मूकी शकाय.

प्राचीन-मध्यकालीन कृतिओ परना डॉ. भायाणीना अभ्यासनुं आरंभबिन्दु एमणे ई.स. १९४५ मां प्रकाशित करेली अब्दुर्रहेमाननी अपभ्रंशमां लखायेली 'सन्देश-रासक'ना पुनःसम्पादित पाठ परनी अभ्यास-भूमिका छे अने गत सदीना अन्तिम वर्ष सुधी, ई. २०००ना उपान्त्य मास सुधी ओमनुं संशोधनकार्य अविरत पूरां ५६ वर्ष सुधी चाल्युं. ८४ वर्षना आयुष्यकाळमां ओमनां ८६ पुस्तको प्रगट थयां ने तेमां ई. १९९६मां प्रगटेलुं 'शोधखोळनी पगदंडी पर' छेल्लुं छे तेनो क्रमांक पण ८६मो छे. ते पछीनां वर्षोमां ई. १९९८मां 'पत्रं पुष्पं' अने 'ते हि नो दिवसा...' थयां ते आत्मकथनात्मक पुस्तको पण तेमनां जीवन अने संशोधननां मूळमां रहेला शीलसभर संस्कार अने अभ्यासने समजवामां चावीरूप छे.

डॉ. भायाणीना ८६ ग्रन्थोमां पण विशेष संख्या तो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश अने जूनी गुजरातीभाषानां संशोधननां पुस्तकोनी ज छे. आमां जे बाकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे छे ते पण छे तो भाषा, व्याकरणादि परनां ज पुस्तको. ए दृष्टिमां लेतां भायाणी-साहित्य-समग्र संशोधन-सम्पादन ज छे. एमां भाषाशास्त्र अने व्याकरणविषयक १७ अने मीमांसानां ८ पुस्तको छे.

संशोधन-सम्पादननां एमनां पुस्तकोमां संस्कृतना लीलावतीसार (१९८३), ध लोस्ट संस्कृत ड्रामाः पुष्पदुषितक एन्ड ध स्टोरी ओफ नंदयन्ती इन जैन ट्रेडिशन (१९९४), एम २ छे. प्राकृतभाषानां पुस्तकोमां संखित्त तरंगवती (१९७९), तारागण (१९८७), वसुदेवहिण्डी मध्यम खण्ड भाग १ (आर. एम. शाह साथे, १९८८) एम ३ अने अपभ्रंशभाषाना सन्देश-रासकनी प्रस्तावना (१९४५), तेनां पुनःसम्पादित पाठ अने भाषान्तर (१९९९), पउमसिरिचरिय (एम.सी. मोदी साथे, १९४८), पउमचरिय भागः १, २, ३, (१९५३, १९६१), नेमिनाथ-चरिय भागः १, २ (एम. सी. मोदी साथे, १९७०, १९७१), सनत्कुमार चरिय (एम. सी. मोदी साथे, १९७२), अपभ्रंश लेंग्वेज एन्ड लिटरेचर (१९९०), रउला-वेला (१९९४), छन्दोनुशासनना प्राकृत अने अपभ्रंशना विभागोनुं भाषान्तर (१९९६), दोहागीतिकोश एन्ड चरियागीतिकोश (१९९७), दोहाकोश ओफ कृष्णपाद, तिलोपाद एम १० छे. जूनी गुजरातीनां पुस्तकोमां मदन मोहना (१९५५), त्रण प्राचीन गूर्जर काव्यो (१९५५), रुस्तमनो सलोको (१९५६), सिंहासन-बत्रीसी वार्ता १८ थी २२ (१९६०, पुनःमुद्रण १९९५) दशमस्कन्ध भागः १, २ (उमाशंकर जोशी साथे, १९६६, १९७२), प्राचीन गूर्जर काव्यसंचय (अगरचन्द नाहटा साथे, १९७५), रयणचूडरास (१९७१), शीलोपदेशमाला बालावबोध (आर. एम. शाह अने गीताबेन साथे, १९९०), नन्दबत्रीसी (कनुभाई शेठ साथे, १९९०), रासलीला (१९८८), पांडवला (१९९१), कृष्णबालचरित (१९९३) एम १२ छे. आम मुख्यत्वे कृतिनिष्ठ संशोधन-सम्पादननां पुस्तको २६ छे.

आ उपरांत भारतीय कथासाहित्य (१९८१), लोकसाहित्य सम्पादन अने संशोधन (१९८५), शोध अने स्वाध्याय (१९६१), अनुसन्धान (१९८२), कृष्णकाव्य अने नरसिंह स्वाध्याय (१९८६), लोककथानां कुळ अने मूळ (१९९०), हस्तप्रतोने आधारे पाठसम्पादन (१९८७), वगेरे विविध निमित्ते थयेलां संशोधन-स्वाध्याय छे.

भारतीयविद्या परनां संशोधन-पत्रो इन्डोलोजीकल स्टडिझ भाग १, २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१९९३, १९९६)मां संग्रहस्थ थया छे. मध्यकालीन कथाकोश भागः १, २ (१९९१, २०००) विविध परम्परागत कथाओनां कथानक अने कृतिसन्दर्भ पूरां पाडे छे तो हरिवेण वाय छे रे हो वन्नमां (१९९०), गोकुळमां टहुक्या मोर (१९९०) अने झरमर मेह झबूके बीज (१९९१) ९० पद-भजनना पाठने सम्पादित रूपमां उपलब्ध बनावे छे अने तेनां छन्दमाप साथे परम्परागत गाननां स्वरांकन आपे छे. मुक्तक मकरन्द (१९९८) अने तरंगवतीनां गुजराती अने हिन्दी अनुवाद (१९९८) प्राकृत न जाणता अभ्यासीने उत्तम अभ्यासक्षम रचनाओ सुलभ अने सुगम बनावे छे.

आ बधांने ध्यानमां लेतां ४६ पुस्तको संशोधन-सम्पादननां छे. आ उपरांत भारतीय विद्याभवन, भाषाविमर्श, संबोधि, अनुसन्धान अने अनुशीलन जेवा संस्थागत शोधपत्रोनां सम्पादन द्वारा पण साहित्य-संशोधननुं कार्य कर्युं. आ कार्य अने पुस्तकोमां प्राचीन-मध्यकालीन गद्य-पद्यनी विविध रचनाओनां उत्तम आस्वाद्य भाषान्तरनां प्रपा (१९६८), गाथामाधुरी (१९७६, १९९१), कमळनां तंतु (१९७९, १९९४), जातककथा-मंजूषा (१९९३), कालिदासवन्दना (१९८६), मुक्तकमाधुरी (१९८६), ऋचामाधुरी (१९८७), मुक्तकमंजरी (१९८९, १९९१), त्रिपुटी (१९९५), मुक्तक-अंजलि (१९९६), मुक्तक-मकरन्द (१९९८) वगेरेनो तथा व्याकरण अने भाषाशास्त्रना १७ पुस्तको उमेरो तो मोटाभागनुं कार्य संशोधन साथे ज सम्बन्ध धरावे छे.

आम ८४ वर्षना आयुष्यनां ५६ वर्ष संशोधननां छे. आ संशोधक विद्यापुरुषना जीवनना तबक्का ज एवी रीते गोठवाया के संस्थाना माध्यमथी विद्याकार्य ज अविरत चालतुं रह्युं. आरंभनां २० वर्ष मुंबईमां भारतीय विद्याभवन जेवी समृद्ध संस्थामां कार्य कर्युं अने ते पछी बे दशका गुजरात युनिवर्सिटी अने ला.द. प्राच्यविद्यामन्दिरमां रही संशोधनकार्य कर्युं. ई. १९८५ थी २००० सुधीना दोढ दायकाथी विशेष काळना अन्तिम तबक्कामां गुजरात साहित्य अकादमी, गुजराती साहित्य परिषद, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, हेमचन्द्राचार्य निधि जेवी संस्थाओना माध्यमथी संशोधन पूर्ण कळाए विकस्युं. आ संस्थाओमां शिक्षण-मार्गदर्शन द्वारा गुजरातना अभ्यासीओने तथा विदेशना प्राच्यविद्याना पण अनेक अभ्यासीओने मार्गदर्शन आप्युं अने भायाणीकुळना आ अभ्यासीओ द्वारा पण जे संशोधन-सम्पादन थयां, तेने पण डो. भायाणीनां आ क्षेत्रना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदानमां गणतरीमां लेवा जोईअे. कारण ए के आवां कार्योमां पण डॉ. भायाणीनुं मार्गदर्शनथी पण विशेष एवुं सक्रिय योगदान छे. केवळ संशोधन-सम्पादनने ज जीवनना आटलां वर्षो आप्यां होय अने आट-आटलां माध्यमोथी संशोधनना जीवनधर्मने सिद्ध कर्यो होय अेवुं बीजुं दृष्टान्त भारतमां के अन्यत्र भाग्ये ज जोवा मळशे !

आ उपरांत पण डो. भायाणीअे विविध निमित्ते विविध राष्ट्रीय-आन्तरराष्ट्रीय सेमिनारमां शोधपत्रो रजू कर्यां, विविध संस्थाओमां व्याख्यानो आप्यां, अे निमित्ते पण संशोधनकार्य थयुं. आवा शोधपत्रोनी ज संख्या बसोथी वधारे छे. आमांथी मात्र २० ज संग्रहस्थ थयां छे. शेष छे तेना संचयो प्रगट करीअे तो पांचेक भाग थई शके.

डॉ. भायाणीनां शिक्षण-संशोधननी अेक लाक्षणिकता ते तेमनुं पत्रलेखन. देश-विदेशना अनेक अभ्यासीओने संशोधनमां सहाय करता आ विद्यापुरुष कोईनो शोधपत्र के पुस्तक वांचे के तरत ज संशोधनना कोई मुद्दा पर पत्र लखे. जरूरी होय एवा- अेटला अंशना झेरोक्ष मोकले. आना अनुसन्धाने जे संशोधनकार्य थयुं, अे पण अहीं ध्यानमां लेवा जेवुं छे. आवा पत्रोनी नकल डो. भायाणीअे राखी नथी, परंतु एना जे प्रत्युत्तर मळ्या, अभ्यासीअे पोतानां प्रकाशनमां सुधारा कर्या के महत्त्वनुं केटलुंक शोधपत्र रूपे के आनुषंगिक पाठसुधाराना रूपे प्रगट थयुं ते जळवायुं छे. आवां त्रणेक दृष्टान्तः

बौद्ध तान्त्रिको, दीक्षित न होय तेवा लोकोथी चर्यापदोना पाठने सुरक्षित राखवा माटे, शब्दो के अक्षरो वच्चे अश्लील शब्दो, गाळ लखता. आथी कोईना हाथमां हस्तप्रत आवे तो ते 'पीळुं' मानीने तजी दे. परंतु पर काईने व्हाईट नामना विदेशी विद्वाने बेंगकोकथी ई. १९८६मां 'अेन अेन्थोलोजी ओफ बुद्धिस्ट तांत्रिक सोंग्स'नुं पुनःमुद्रण करी डो. भायाणीने मोकल्युं. अेमां गाळना शब्दो कौंसमां मूकवाथी चर्यापदनो गुप्तपाठ प्रगट थतो हतो. अेनी भाषा अपभ्रंश हती. डो. भायाणीअे भ्रष्ट पाठने सुधार्यो अने शब्देशब्दना अर्थ बेसाड्या अने एने आधारे 'रीस्टोरेशन ओफ ध टेक्स्ट ओफ ध चरिया-गीतिझ' तैयार थयुं, अे प्राकृत टेक्स्ट सोसायटीमां प्रकाशित छे.

आवुं बीजुं रसप्रद संशोधन छे ते मतिसारनी कृतिमां विरहिणीअे करेलां चित्रांकननुं छे. रात वहेली गई. चन्द्र मध्य आकाशे पहोंच्यो. लांबा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काळे विरहिणीने प्रियतमनो संयोग थयेलो. अे अगाशीअे गई अने चारे दिशामां चार सिंह दोरती आवी ! आ हस्तप्रतना चित्रनुं रहस्य डॉ. भायाणीअे समजाव्युं. चन्द्रमां मृग छे. अेथी चन्द्र ज्यारे आथमवा जाय त्यारे चन्द्रमां रहेलुं मृग ज चन्द्रने वारे ! त्यां सिंह होवाने कारणे ! आम मृग चन्द्रने अेकेय दिशामां जवा न दे अने अगासीअे आवेलो चन्द्र क्यारेय न आथमे, मध्यमां ज रहे अने विरहिणीने रात पूरी थतां ज आवी पडनार वियोगमांथी मुक्ति मळे ! आ अर्थ डॉ. भायाणीअे समजाव्यो अने विरहिणी तथा चन्द्र, मृग, सिंह, राहु वगेरे साथे संकळायेला आवा सन्दर्भो आप्या ! आवुं ज फिलिप्स युनि.ना डॉ. मिशेल हानना KR ना सम्पादन-सन्दर्भे 'जलायाहा' के 'जलायहुवा'नी मदनसन्दर्भे पत्र चर्चा छे.

डॉ. भायाणीने एमनी कारकिर्दीना अने संशोधनना आरंभना गाळामां ज भारतीयविद्याभवन जेवी संस्था अने अेना ग्रन्थालयनो लाभ मळ्यो ते प्राणवायु जेवो प्रभावक बन्यो. अे साथे ज जिनविजयजी जेवा समर्थ गुरुने कारणे अपभ्रंश अने प्राकृतना ज्ञानराशिनो लाभ मळ्यो. प्रकृतिथी ज विद्याना ज प्रेम अने ताटस्थ्यने वरेला आ संशोधकने आ गाळामां ज पूर्वना अने पश्चिमना उत्तम विद्वानोना ग्रन्थोनो लाभ मळ्यो. भाषाशास्त्र, व्याकरण, बोलीविज्ञान, व्युत्पत्ति, प्राचीन-मध्यकालीन कृतिओनां पाठसम्पादननी पद्धति, लोकविद्या, शैलीविज्ञान अेम अनेक ज्ञानशाखानां पुस्तकोनो अहीं लाभ मळ्यो. पूर्वकाळनी कृतिओना मूळ पाठने सम्पादित कर्या पछी भाषाशास्त्र ज नहीं, परंतु अन्य विद्याशाखाओनी मदद लईने, इन्टर डिसिप्लिनरी अेप्रोचथी आवां सर्जन अने तेनां प्रकार, स्वरूप, सामग्रीने पामवानी दृष्टिनुं घडतर थयुं. पाठनिर्णय, अर्थदर्शन अने अभ्यासमां पायानी विचारणाना अभिगमनो विकास थयो. आथी ज डॉ. भायाणीनां कार्य द्वारा ज मध्यकालीन साहित्यना अध्ययनमां नवां नवां परिमाणो उमेरायां.

डॉ. भायाणी पहेलां पण मध्यकालीन साहित्य-संशोधनक्षेत्रे समर्थ विद्वानोअे शास्त्रीयकक्षानां सम्पादनो कर्यां हतां. अे अभ्यासमां शब्दार्थ, छन्द वगेरे दृष्टिअे पण विचारायुं हतुं. परंतु डॉ. भायाणीमां जे विशिष्ट अने विशेष हतुं ते विविध भाषाओ अने भाषाशास्त्रनुं ज्ञान. आ कृतिओना, ते समयना साहित्यना स्वरूपने अने आजना साहित्यथी जुदा पाडनारा भेदने भायाणी ज समजी शक्या, अभ्यासमां उतारीने समजावी शक्या. मध्यकालीन साहित्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आजना साहित्यनी जेम कोई एक व्यक्ति निजी एकान्तमां पण आस्वादी शके ए हेतुनुं नथी परंतु ते रजूआतनुं अने सामुहिक आस्वादन माटेनुं छे, ते प्रगट रूपमां तेओ दर्शावी शक्या अने संशोधनमां नवुं, वास्तविक अभ्यासनुं, अहोभाव के हीनभावथी मुक्त अेवुं, अभ्यासपरिमाण उमेरायुं. मानवविद्याओनो इन्टरडिसिप्लिनरी अेप्रोच ते पछी ज विकस्यो.

डॉ. भायाणीनां चार भाषाओने विषय करता संशोधन-सम्पादन पर आटलो दृष्टिपात करीने तेमनां संशोधनकार्यनी उपलब्धि अने विशिष्टता तारवीअे तो अेमां आवी सिद्धि जोवा मळे छे:

१. संस्कृत, प्राकृत अने अपभ्रंशनां १५ पुस्तको मुख्यत्वे अंग्रेजीमां छे. तेमां लीलावतीकथा, तरंगवतीकथा, वसुदेवहिण्डी, पद्मचरित, सनत्कुमार चरित वगेरे कथाकृतिओनां सम्पादन-संशोधन छे. आ कथाओ ज काळक्रमे मध्यकालीन गुजरातीमां रास-प्रबन्धादि स्वरूपोमां ऊतरी आवी छे अने कण्ठपरम्परामां पण अे रही छे. गुजराती लोकसाहित्यनी रामकथाविषयक रचनाओमां पण केटलीक अेवी छे जेमां जैनस्रोतनी रामकथानी पण असर झिलाई छे. आथी आ संशोधन-सम्पादन मध्यकालीन गुजराती साहित्य अने लोकसाहित्यना अभ्यासमां प्राणभूत रूपमां उपयोगी छे.

२. संशोधन-पत्रोना संचयो पण अंग्रेजीमां तथा मुख्यत्वे गुजरातीमां छे. ते पण मध्यकालीन गुजराती साहित्य परना ज अभ्यास छे.

३. पाठसम्पादन अने अभ्यास बन्नेनुं अणीशुद्ध शास्त्रीयरूप डो. भायाणीनां कार्यथी ज पूर्ण अने बहुपार्श्वी बन्युं छे.

४. संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश अने जूनी गुजराती अे चारे भाषाओ अने अेनां व्याकरण अने साहित्यने पण जाणता होय अेवा प्रथम संशोधक विद्वान छे. भाषाशास्त्र, शैलीविज्ञान, पूर्व अने पश्चिमनी प्राचीन अने आधुनिक मीमांसा पण जाणता होय अेवा पण प्रथम संशोधक विद्वान छे. पूर्वनुं जाणनार विद्वान पश्चिमनुं ओछुं जाणता होय छे, भाषाशास्त्र-व्याकरणादिना विद्वानने साहित्य, आस्वाद अने विवेचन साथे प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहेतो नथी. साहित्यविद्यामां पारंगत विद्वान लोकपरम्परा अने लोकविद्या पर लक्ष राखी शकता नथी. आथी क्यांक संशोधननुं कोई अेक विद्वाननुं कोई एक अंग क्यांक ऊणुं ऊतरे छे. डो. भायाणीनां संशोधन आवी न्यूनताथी मुक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छे. परम्परा अने विद्यामात्रमां तेमनां रसरुचि अने शक्ति-दृष्टि तथा गतिने कारणे अेमनां संशोधनो-सम्पादनो बहुपार्श्वी, पूर्ण अने तटस्थ वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन सिद्ध करी शक्यां.

५. प्राचीन-मध्यकालीन कृतिओना मूळभूत के आदर्श वा आधाररूप पाठनो निर्णय करवानी पद्धति डॉ. भायाणीअे पूर्ण शास्त्रीय कक्षाअे सिद्ध करी. पूर्वसूरिओमां पण उत्तम विद्वानो अने भाषाविदो हता ज. परंतु सामान्य रीते तो उपलब्ध हस्तप्रतोमां जे जूनामां जूनी होय अने प्रमाणमां शुद्ध होय अेवी हस्तप्रतने मुख्य मानीने तेनुं सम्पादन करवामां आवतुं अने अन्य हस्तप्रतोना महत्त्वनां पाठान्तरो नोंधवामां आवतां हतां. डॉ. भायाणीअे पण आ पद्धतिनो ज आधार लीधो, परंतु तेओ आवां पाठान्तरोनां कारणोना ऊंडाणमां गया अने समय बदलातां भाषा अने सामाजिक परिस्थिति पण बदलायेली होवाथी पूर्वकालीन कृतिओना समयानुसारी नवावतरण थतुं होय छे ते तेमणे समजाव्युं अने अेथी ज भाषाकीय, सामाजिक अने कथानकगत परिवर्तनोनो आलेख आपी शक्या.

हस्तप्रतना पाठनुं सम्पादन केवी रीते करवुं, अे दिशामां विचारतुं प्रथम पुस्तक पण डॉ. भायाणी 'हस्तप्रतोने आधारे पाठसंपादन' (१९८७) अे नामे आपे छे. अेमनां अन्य सम्पादन-संशोधनमां तथा विदेशी अभ्यासीओ साथेनी पत्रचर्चामां पण पाठनिर्णय अंगे मूल्यांकन, चर्चा अने मार्गदर्शन छे. हस्तप्रतोना वाचन अंगेनी कार्यशिबिर-निमित्ते पण अेमणे आ अंगे व्यापक चर्चा करी छे. आ अेक ज मुद्दा पर कोई अलग अभ्यास हाथ धरवामां आवे तो टेक्स्टोनोमी के टेक्स्टोलोजीनुं शास्त्र बांधवानो पायो नाखी शकीअे, एटलुं मातबर काम छे.

६. कण्ठपरम्पराना पाठने 'मेन्टलटेक्स' कहेवामां आवे छे. अे कथक के गायकना मनमां होय छे, अेकना अेक कथक/गायकनी परम्परागत रचनाओ पाठ हेतु-सन्दर्भ प्रमाणे बदलातो रहे छे. अे रीते लोकव्याप्त रचनाओना पाठ पण प्रवाही होय छे. लिखित अने कण्ठपरम्परामां पाठपरिवर्तन केम थाय छे, तेनी विविध तबक्के दृष्टान्त सह चर्चा करी- १. मौखिक परम्परामां निरक्षर वर्गमां प्रचलन २. गेयरूपमां शब्दोनी वधघट, फेरफार अने बदलवानो पूरतो अवकाश, ३. शब्द करतां भावनुं महत्त्व, ४. समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाओनो एकबीजा पर प्रभाव, ५. लिखित परम्परामां लहियानुं प्राथमिक कक्षानुं अक्षरज्ञान, ६. जोडणीनी प्रवाहिता, ७. मौखिक परम्परानो लिखित परम्परा पर प्रभाव, ८. प्रादेशिक भाषा के बोलीओनो प्रभाव - एवां आठ कारणो तारवी आप्यां. [जुओ: शोधखोळनी पगदंडी पर, ह. भायाणी, श्री शा.ची. एज्युकेशनल रीसर्च सोसायटी, अमदावाद, १९९७, पृ. ९८)

७. मध्यकालीन साहित्यनां हेतु अने पद्धति आधुनिक साहित्यना विवेचन-मूल्यांकनथी तत्त्वत: भिन्न छे, ते प्रथमवार डो. भायाणीनां संशोधन-सम्पादन द्वारा प्रगट थयुं अने आवा अभ्यासनुं शास्त्रीय रूप बंधायुं. मध्यकालीन कृतिओनी कथाओने नाटक-नवलकथा जेवा आधुनिक कथाप्रकार अने स्वरूपने आधारे मूलववामां आवती हती अने कथावस्तु, संकलन, पात्रालेखन, समाजदर्शन जेवा रूढ थई चूकेला अभ्यास-माळखामां मूकीने जोवामां आवती हती. आजना साहित्य करतां प्राचीन-मध्यकालीन साहित्य प्रवर्तने तात्त्विक रीते भिन्न छे, अे तरफ डो. भायाणीअे ध्यान खेंच्युं. प्राचीन-मध्यकालीन साहित्य बहुधा रजूआतनुं समूहभोग्य छे. आवी कृतिने भाषाकीय सामाजिक, सांस्कृतिक अने लोकतात्त्विक दृष्टिअे तपासवी जोईअे, ते प्रगट कर्युं 'मदनमोहना' (इ. १९५५) द्वारा.

८. प्राचीन-मध्यकालीन कथाओना कथानकनो पृथक्करणात्मक साम्यमूलक अभ्यास पण डो. भायाणीथी आरंभायो. प्राचीनतम भाषाओ अने तेनी कथाओनी जाणकारी, अद्भुत स्मृति, आर्ने-स्टीथ थोम्प्सन जेवा विश्वना नामांकित लोककथाना अभ्यासीओनां पुस्तकोनुं परिशीलन- आवां कारणे डो. भायाणीनां संशोधन-सम्पादनमां कथाघटक, कथाबिम्ब, कथाचक्रनी पद्धतिनो आधार लेतो अभ्यास प्रारंभायो. संस्कृत, प्राकृतादि भाषाओनां ज्ञानपरिशीलनने कारणे डो. भायाणी भारतीय लोककथाओनां प्राचीनतम मूळ सुधी पहोंची शक्या अने अनेक कथाओनो पृथक्करणात्मक साम्यमूलक अभ्यास आपी शक्या. अन्य भारतीय भाषाओमां क्यांय आवुं कार्य थयुं ज न हतुं. श्री नाहटाजी तथा डो. सत्येन्द्र जेवा विद्वानो आथी ज तो तेमनां प्रत्येक अभ्यास-संशोधननां पुस्तको उपरांत प्रकाशित लेखनी ओफ-प्रिन्टस पण डो. भायाणीने मोकलता. कोई पण भारतीय भाषानी परम्परागत कथाना अभ्यासमां डो. भायाणीनां संशोधनो, कुळ-मूळ शोधवामां उपयोगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बने, अेवुं आ संसिद्ध कार्य छे.

९. साहित्य अने लोकसाहित्य अभ्यासदृष्टिअे पडेला हेतु-प्रवर्तन दृष्टिना भेद छे, परंतु मध्यकालीन साहित्यना अभ्यासमां ते परस्पर पूरक, उपकारक छे ते डॉ. भायाणीनां संशोधन द्वारा प्रगट थयुं. मध्यकालीन साहित्यना अभ्यासमां क्यारेक केटलाक प्रश्नो जन्मे छे, तेना केटलाक समाधान के उत्तर कण्ठपरम्परामां मळे छे, ते दर्शाव्युं. मध्यकालीन कृतिओनी हस्तप्रतोमां पण कण्ठस्थ परम्परानां विषय-वस्तुनुं दस्तावेजीकरण केवी रीते थाय छे, थयुं छे ते दर्शाव्युं. लोकसाहित्यमाळाना चौद ग्रन्थोनी पांचेक हजार जेटली रचनाओनुं विषयानुसारी पुनःसम्पादन अने अभ्यास करावीने अेमणे लिखित-परम्परा अने कण्ठ-परम्पराना अन्योन्याश्रयी अेमणे लिखित-परम्परा अने कण्ठ-परम्पराना अन्योन्याश्रयी अनुबन्धने सदृष्टान्त दर्शाव्यो अने 'लोकसाहित्य'नी प्रचलित विभावना पण फेरविचारणा मागे छे, ते दिशामां ध्यान खेंच्युं.

१०. मध्यकालीन साहित्य अने लोकसाहित्य रजूआतनुं समूहभोग्य साहित्य छे अने अेमां ज अेनुं पूर्ण रूप प्रगट थाय छे ते पर विशेष ध्यान खेंच्युं. पाठसम्पादननिमित्ते विविध शब्दो अने अेना अर्थसन्दर्भनी चर्चा करी तेम प्राकृत-अपभ्रंशादिना प्राचीन छन्दोनी पण चर्चा करी अने विविध गेयढाळोनी देशीओना छन्दबंधारणनुं माळखुं स्पष्ट करतां तिस्र अने चतस्र मात्राओनां आवर्तनो केवी रीते गेय ढाळ बांधे छे ते दर्शाव्युं. आजे पण गवातां ढाळनां इंगितो दस्तावेजी रूपमां हस्तप्रतोमां क्यां मळे छे, तेना पर प्रकाश पाड्यो. जे परम्परागत ढाळमां कोई देशी गवाय के पद-भजन-धून गवाय त्यारे अेनुं गानस्वरूप पण अक्षरबद्ध करवुं जोईअे ते ध्यानमां लईने 'हरिवेण वाय छे रे हो वन्नमां' (१९९०), 'गोकुळमां टहूक्या मोर' (१९९०) अने 'झरमर मेह झबूके वीज' (१९९१) अे त्रण संग्रहनी ९० पदरचनाओ छन्दबंधनी चर्चा अने परम्परागत गाननां स्वरांकन साथे आपी.

११. संशोधक भायाणीनुं विशिष्ट अर्पण ते आ प्रकारनां संशोधन-सम्पादन माटे अनिवार्य रीते उपयोगी अेवा कोश अने सूचिग्रन्थोनां निर्माण, प्रकाशन. अेमनां मार्गदर्शनमां मध्यकालीन गुजराती कथाओना कोशना बे भाग डॉ. कनुभाई शेठ, वसंतभाई दवेअे तैयार कर्या. श्री प्रकाश वेगड, डॉ.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलवंत जानी, श्री किरीट शुक्ल, डॉ. निरंजना वोराअे तेमनां मार्गदर्शनमां संशोधनमां सन्दर्भ सामग्रीनो निर्देश करे अेवा सूचिग्रन्थो प्रगट कर्या.

गुजरातनी देशीओना गानना ढाळ भविष्यना अभ्यास माटे जाळवी शकाय ते माटे ध्वनिमुद्रणो कराव्यां अने भालणनी कादम्बरीओनी देशीओना ढाळ पोते गाया अने तेनुं ध्वनिमुद्रण कराव्युं.

प्राचीन-मध्यकालीन गद्य-पद्य कृतिओनां आधुनिक वाचको-भावको माटेनां डॉ. भायाणीनां अनुवादो अने पुनःकथन प्रकारनी पालिभाषानी जातकथाओनी वार्तामां ढळेली कृतिओ पण अेमनां संशोधननुं ज अंग छे. अे द्वारा अेमनुं हेतु तो परम्परागत प्राचीन-मध्यकालीन साहित्यनुं केटलुंक उत्तम भाथुं साम्प्रत प्रवाहमां रहे अने भविष्यना संशोधकोने आकर्षे, अे ज रह्यो छे. आ प्रकारमां मर्मज्ञ पण्डितमां रहेली सर्जकता पण प्रगट थाय छे. आन्तर राष्ट्रीय कक्षाए प्रति बे वर्षे मळती भारतीय भाषाओ परना संशोधननी कोन्फरन्समां पण डॉ. भायाणी प्रेरणारूप अने प्रवृत्त हता. त्रीजी कोन्फरन्सथी ते आठमी कोन्फरन्सना संशोधन-पत्रोमां अनेक स्थळे डॉ. भायाणीनां मार्गदर्शनना सन्दर्भ मळे छे. अेमणे अेमना अनुगामीओ अने विद्यार्थीरूप अभ्यासीओने पण आ प्रकारना आन्तरराष्ट्रीय परिसंवाद माटे प्रेर्या अने अे निमित्ते गुजरातनी साहित्य-परम्परा परना संशोधन-पत्रोने विश्वकक्षाअे स्थान मळ्युं.

डॉ. भायाणीनो मुख्य हेतु तो आ निमित्ते भारतनी सांस्कृतिक सम्पदाने शोधीने तेने लुप्त थती अटकाववानो हतो. अने अे साडा पांच दायकाना अेमनां संशोधन-सम्पादन द्वारा सिद्ध कर्यो. आ दिशामां अनेकने प्रेर्या, गतिशील राख्या अने देश-विदेशना भायाणीकुळना अभ्यासीमां सांस्कृतिक सम्पदानी शोधनां मूळ नंखाया अने अेना मूल्यने साम्प्रतमां स्थापवानी मथामण जन्मी. आम समयफलक, विषयविस्तार अने विद्योपासनाना सातत्य-संवर्धनने दृष्टिमां राखीअे तो सहेजे कही शकाशे:

डॉ. भायाणी अेटले गत सदीना मूर्धन्य संशोधक. हेमचन्द्राचार्य अने यशोविजयजी जेवी ज उज्ज्वळ गुजराती पाण्डित्यनी परम्पराः मेजर इन्टरनेशनल स्कोलर ओफ इन्डोलोजी !

३, शीतल प्लाझा, लाड सोसायटी पासे,
वस्त्रापुर-बोडकदेव, अमदावाद-३८००५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहिती

स्मृतिशेष विद्वज्जनो

(१)

गुजराती भाषाना मरमी कवि श्रीमकरन्द दवे (नन्दिग्राम, वलसाड)नुं देहावसान ता. ३१-१-०५ना दिने थयुं. कवि, साहित्यसर्जक तेमज साधक तरीके तेमनी प्रतिभा तथा प्रतिष्ठा अनन्य हती. 'अनुसन्धान'ना जन्मकालथी ज तेमणे तेमां ऊंडी निसबत दाखवी हती. स्व. डॉ. भायाणीना मित्र होवाने कारणे तेमज पछीथी आ सम्पादक साथेना सम्पर्कने कारणे 'अनुसन्धान' प्रत्ये तेमनो लगाव हमेशां रह्यो हतो. तेमनी विदायथी आपणा साहित्यजगतने तेमज अध्यात्मजगतने मोटी खोट पडी छे.

(२)

भारतीय लिपिशास्त्रना प्रखर अभ्यासी पं. लक्ष्मणभाई हीरालाल भोजकनुं ता. १५ मार्च २००५ना दुःखद अवसान थयुं छे. हस्तप्रत-विज्ञान एटले के हस्तप्रति केवी रीते लखाय तथा तेनी साचवणी केवी रीते करवी घटे ते विषयना तेओ एकमात्र विशेषज्ञ हता. ए विषयमां तेमनी बराबरी करे तेवी व्यक्ति हजी सुधी तो जोवा-जाणवामां आवी नथी. ८४ वर्षनी जैफ वय अने केन्सर जेवुं भीषण दरद, छतां छेल्ला थोडाक दिवसोने बाद करतां छेक सुधी तेओ ला. द. विद्यामन्दिरमां कार्यरत रह्या हता. तेमनी विदाय साथे प्राचीन लिपिशास्त्र अने हस्तप्रतविज्ञानना क्षेत्रे एक उज्ज्वल परम्परा स्मृतिशेष बनी छे.

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'विशेषावश्यक भाष्य'नो स्वाध्याय करतां सूझेल सुधारानी नोंध

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्धपाठ	शुद्धपाठ
२०१	११	अणुवयण०	अणुजोयण०
२०१	१२	अभिहिए	अभिहेए
२०१	१९	अनुवचन०	अनुयोजन०
२०२	१५	पिह प्पिहाणं	पिहप्पिहाणं
२०३	२७	०संसृक्तः	०संसक्तः
२०४	८	करणाऽवैफल्यादि०	करणवैकल्यादि० (?)
२०९	३४	सुएन	सुए
२१०	१२	०कपिशवर्ण०	०कपित्थवर्ण०
२१०	३५	देसाईसु	देसाइसु
२१२	१०	प्रकारान्तरम०	प्रकारान्तरत्वम०
२१५	९	०करणोपादान०	०करणापादान०
२१७	८	०र्ववृत्त्यादि०	०र्वनृत्यादि०
२१८	१६	०मेकमृषित्वा	०मेकं मृषित्वा
२२१	१३	०णुपूर्व्वीणं	०णुपुव्वीणं
२२१	३४	जहिम्मि	जहियम्मि
२२२	३१	नाम द्विनाम०	नाम एकनाम-द्विनाम०
२२३	२९	कालादर्थात्	कालादर्वाक्
'२२५	३४	०गरिफोसण०	गरिफासण०
२२८	७	नन्वसावाव०	नन्वस्याऽऽव०
२२९	२२	सुयस्य	सुयस्स
२२९	३५	तत्तोव०	तत्थोव०
२३०	१	सरुप०	स्वरूप०
२३१	३०	अप्पग्ग्रंथ०	अप्पगंथ०
२३२	१३	०प्रयत्नानन्त०	०प्रयत्नानान्त०
२३२	२१	कटतट०	कटितट०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३२	२१	रथावहिनी	रथवाहिनी
२३५	१०	०निषेधो	०निषेधार्थं
२३७	११	मंगलं ति य बु०	मंगलतियबु०
२३७	१९	मङ्गलमिति च बु०	मङ्गलत्रिकबु०
२३८	३५	पुण्हकारणं	पुण्णकारणं
२३९	२	०लयप्रापकं	०लयपारप्रापकं
२३९	४	०धेनु०	०धनुः०
२४१	११	०स्वाभावा	०स्वभावा
२४१	३८	करणक्रिया०	तरणक्रिया०
२४६	५	सुयस्स विसेसणं	सुयविसेसणं (?)
२४६	७	अर्थप्रतिपादकेनोप०	अर्थपृथुत्वप्रतिपादकत्वेनोप०
२४६	१७	सुयगडे	सूयगडे
२४६	१८	श्रुतस्य विशे०	श्रुतविशे० (?)
२४७	२३	स्वकीयेनैवाचार्यो०	स्वकीयेनैव वर्तमानाचार्यो०
२४७	२६	जणोवद्दिट्ठं	जणुद्दिट्ठं (?)
२५१	१२	वृष्टिकारणे	वृष्टिं कारणे
२५२	१	तदवझप्फलं	तदवंझप्फलं
२५२	४	कमण०	कमल०
२५३	९	जीवितमा०	जीतमा०
२५४	१५	०यणहियउ	०यणहिउ
२५८	४	न इच्छियसंपावयं ति नाणं	इच्छियसंपावयं न नाणं
२५८	१७	नेप्सितसंप्रापक-मिति ज्ञान०	ईप्सितसंप्रापकं न ज्ञान०
२५९	४	न उण तन्नाणी	न उ मतं नाणी
२५९	१८	न पुनस्तज्ज्ञानी	न तु मतं ज्ञानी
२६२	२३	०निर्जरफला	०निर्जराफला
२६३	१३	सुयं-चर०	सुय-चर०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६३	३३	०शब्दाद् बाह्यमपि	०शब्दात् अङ्गबाह्यमपि
२६४	१४	०यणुत्त्पत्ती ?	०यणुप्पत्ती ?
२६५	१	आउस	आउस्स
२६६	७	चइण्ह०	चउण्ह०
२६६	१७	दुःक्षेप०	दुःक्षप०
२६६	१७	वल्कादे०	वल्ल्यादे०
२६६	२९	परिस्सम्मइ	परिस्समइ
२६८	८	क्षेपणम्	क्षपणम्
२६९	९	जंतडवि०	जंतऽडवि०
२७३	१३	सदाऽऽव्रियते	सदाव्रियते
२७३	१३	०भव्यानां केवलम्	०भव्यानामपि केवलम्
२७३	१४	केवलज्ञानेना०	केवलावरणेना०
२७३	१६	सदाऽऽव्रियते	सदाव्रियते
२७३	३६	०रक्खत्तणाओ	०रक्ख[ण?]त्तणाओ
२७६	१५	सुहुम-हक्खा०	सुहुमाऽहक्खा०
२७७	२७	सामाइयं	सामइयं
२७९	१३	नवण्हं	नवण्ह
२७९	२९	वाउंविंति	वा उविंति
२७९	३२	प्रतिपन्नः अन्य०	प्रतिपन्नाऽन्य०(?)
२८०	२६	०गयस्स सुहुमं	०गयस्स व सुहुमं
२८०	२६	०क्खयओ	०क्खयाओ
२८३	१	तं अत्थे०	तं नियमा वेएइ, तत्थ णं जं तं अणुभावकम्मं तं अत्थे०
२८४	२	सामान०	समान०
२८४	३४	तं बहु	तं बहुं
२८६	४	विणिज्ज	चिणिज्ज
२८६	८	०त्तक्खए	०त्तखए
२८६	१७	विनयेद्	चिनुयाद्
२८६	२१	सुण्ह०	सण्ह०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८६	२८	स च क्षपितो	स चाऽक्षपितो
२८७	३	खइए	खाइए
२८७	४	तन्निवृत्तं	तन्निर्वृत्तं
२८७	२०	सोलसं	सोलस
२८७	२५	तइयं वेयं	तइयवेयं
२८८	३	स्ताघेऽगाधे	स्ताघे गाधे
२९०	११	०चतुष्टयं न	०चतुष्टयेन
२९०	१३	आरूढो जं	आरूढोऽयं
२९०	२०	०रूढो यज्जिनो०	आरूढोऽयं जिनो०
२९०	२६	जिणप्पवयण०	जिणपवयण०
२९०	३४	०शेषद्वाराण्यु०	०शेषं द्वाराण्यु०
२९१	६	०दारासंग०	०दारा संग०
२९१	७	निक्षेपानुगमो	निक्षेपोऽनुगमो
२९१	११	०गृहीत्वेन	०गृहीतत्वेन
२९१	११	०स्तुत्वात्	०स्तुतत्वात्
२९१	२०	०पुर्विकेयं	०पूर्विकेयं
२९१	२३	उ वण्णसिउ	उवण्णसिउं
२९२	१४	उयारेउं	ओयारेउं
२९२	१७	इत्यादिर्द्वारविधिर वर्गिव प्रस्तु०	इत्यादिद्वारविधेर वर्गिव अप्रस्तु०
२९३	२१	जिणपवयणं	जिणप्पवयणं
२९४	४	०वावित्तउ	०वावित्तओ
२९४	९	तं	जं
२९४	२२	सामान्नं	सामन्नं
२९५	१६	०शब्दमय०	०शब्दनय०
२९६	३१	काले वयण०	काले य वयण०
२९७	७	०रूपस्थापना	०रूपा स्थापना
२९७	१५	यस्यैव	यस्तस्यैव
२९७	१५	योगोऽनु०	योग्योऽनु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९७	३०	०दव्वस्स वा	०दव्वस्स व
२९८	गाथा १४०० पछी–		

खित्तेहिं बहुदीवे पुढविजियत्णं तु पत्थयं काउं ।
एवं मविज्जमाणा हवंति लोगा असंखेज्जा ॥

[आ गाथा मुनिश्रीराजेन्द्रविजयनी सम्पादित, बाई समरथ जैन श्वे.मू. ज्ञानोद्धार ट्रस्ट प्रकाशित प्रतिमां अधिक छे.]

२९९	१७	०वयाइवय०	०वयाई वय०
२९९	२८	०वयण०	०वणय०
३०१	९	सो अण०	सो उ अण०
३०१	२५	निर्युक्ते	नियुक्ते
३०१	२६	न तावता	नैतावता
३०१	३०	सव्वलोयं	सव्वलोयं(वं)
३०२	४	ततो	जओ
३०२	२६	०देवता छल०	०देवताछल०
३०३	७	ईदृशेष्टे	ईदृशे दृष्टे
३०४	९	चैतेऽमी करिष्यन्ति	चैते मां कारयिष्यन्ति
३०६	२६	व्यक्तिभाव०	व्यक्तीभाव०
३०६	२८	शास्त्रपरिज्ञा	शस्त्रपरिज्ञा
३०७	३	जम्मि वा	जम्मि व
३०७	१२	भासगाइया	भासगाईया
३०८	१२	रयणाणं	रयणाण
३०८	१२	०दओऽत्थ०	०दओ अत्थ०
३०९	१३	णेगंताणा०	णेगंतेणा०
३०९	३५	भर्य	भेर्य
३१०	२८	साइवाइज्जए	सा य वाइज्जए
३१०	३२	विदिंतेण	वि दिंतेण
३१०	३९	सातिवाद्यते	सा च वाद्यते
३११	३२	०वाभारणा०	०वाभरणा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१२	३२	देसो	वेसो
३१३	२७	तस्सुपरिं	तस्सोपरिं
३१३	२८	गज्जइ	गज्जई
३१४	१०	पिय	पिच
३१४	१०	वझा	वंझा
३१४	२६	देयमच्छित्ति०	देयमछित्ति०
३१४	३१	ईत्यन्वन्य०	इत्यन्वय०
३१५	१	०यणआसन्नेहिं	०यणओसन्नेहिं
३१६	१	दव्वं	दवं
३१६	३	द्रव्यं	द्रवं
३१६	१०	सव्वण्णुपामन्ना	सव्वण्णुप्पामन्ना
३१६	२१	को कालो ?	कोऽकालो ?
३१६	३३	अत्थकुपु०	अथक्कपु०
३१७	२	०यम्मि पिवे	०यम्मि वि पिवे
३१७	२२	जाहगो जह लिहइ	जाहगो लिहइ
३१७	२९	स्वग्रहे	स्वगृहे
३१७	३१	बहुयाणं	बडुयाणं
३१७	३५	बहूनां	बटूनां
३१८	१४	सुणुदंता	सुणदंता
३१८	१६	०वाहिक्खोभो	वाहिखोभो
३१८	३०	भूमावीभीरी	भूमावाभीरी
३१९	५	अज्ञाते	अजाते
३१९	८	०ऽयोगान्	०ऽयोग्यान्
३१९	९	०ऽजोगा	०ऽजोग्गा
३१९	१८	समोयरणा०	समोया(?)रणा०
३१९	२२	०फोसण०	०फासण०
३१९	३४	तेषां य	तेषां च
३२०	२३	जहण्णदो	जहण्ण दो
३२०	२७	सहस्सपुहत्तं	सहसपुहत्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२२	६	तज्झेया	तयज्झेया
३२३	२७	क्षयिक०	क्षायिक०
३२३	३७	०सरिच्छं	०सारिच्छं
३२४	१४	संग्रहो	संगहो
३२५	२६	वा वत्तरि	वा जइ वत्तरि
३२६	२१	तस्स सकार०	तस्सकार०
३२७	७	तस्माद् वाच्य०	तस्मान्न वाच्य०
३२७	२२	वाच्य:	वाच्य
३२८	११	वयणीज्जाओ अनन्नो	वयणिज्जाओऽनन्नो
३२९	३९	सचित्ताई	सच्चित्ताई
३३०	४	सचित्ताओ	सच्चित्ताओ
३३१	१	रूवाई	रूवाइ

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहंगावलोकन

उपा. भुवनचन्द्र

अनुसन्धान-२९मां प्रथम क्रमे मूकायेली कृति 'ऋषभशतक' जैनाचार्योनी विद्वत्ता, सर्गशक्ति, संस्कृतप्रीति अने प्रभुप्रीतिनी परिचायक अने प्रतिनिधि समान कृति छे. अमुक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय बनेली पूर्वकृतिना अनुकरणरूपे नूतन कृति रचवानी होंश विद्वानोने थाय छे. ''ऋषभशतक' जम्बूकविना 'जिनशतक'नी अनुकृति छे, पण आमां मात्र अनुकरण नथी,कर्तानी मौलिक सर्जनशक्तिना उन्मेष आमां हाजर छे.सम्पादक मुनिश्रीए कृति तथा कर्तानो परिचय संक्षिप्त अने समुचित रूपे आप्यो छे. कृतिनो पाठ शुद्ध करवानो पूरो प्रयास थयो छे, किन्तु एक ज आधारभूत प्रति होवाथी केटलांक स्थान सन्दिग्ध रह्यां छे. कृतिमांथी पसार थतां ज्यां कशुंक समजायुं ते अहीं विद्वानोनी विचारणा माटे नोंधुं छुं :-

स्तव / श्लोक / पंक्ति	अशुद्ध	सूचित
१/२/१	पथयिता	प्रथयिता
१/६/	प्रथम-द्वितीय पंक्ति आम होई शके :- शश्वत्संश्रितसर्वमंगलमभूद्गात्रं च **शक्तिः**- शुभा मन्युध्वंसविधायिनी **च** नितमां भालं दलाब्जाद्भुतम्	
१/७/१	सज्ञानया	**सज्ञातया**
१/१०/१	स्वःशास्तीव	**स्वःशाखीव**
१/२१ ४	गवा[क्ष]	**गवीव**
१/२४/३	बिभरांबरांबभूव	

अहीं लिपिकारनी चूकथी 'बरां वधु लखायुं छे आवी क्षतिने सम्पादक-संशोधक दूर करी दे- कौंसमां न सूचवे - तो संशोधननी दृष्टिए अनुचित न गणावुं जोइए. आ विशे विद्वानो विशेष प्रकाश पाडे एवी अपेक्षा.

२/४/१	क्रोधाविरो (?)	**क्रोधो** विरोधो
२/१८/३	भ[भा]	प्रभा
२/१९/२	मरुता०	भवता०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४/३/३	तत्तन्नो	तत्तप्तो
४/१४/२	प्रसन्नं	प्रसभं
४/१६/३	तन्मेसौ (?)	तन्मेऽसौ
४/१७/२	प्रापं (प्राप्य)	'प्रापं'पाठ योग्य ज छे
४/२५/३	रक्षो	०रिक्षो

'पन्नर तिथि' शीर्षकवाळी रचना एक विलक्षण रचना छे. भिन्न भिन्न संस्कृतिओनुं संमिश्रण थया ज करतुं होय छे, रिवाजो-प्रतीको-शब्दावलिनुं परस्पर आदानप्रदान थतुं ज होय छे. प्रस्तुत कृतिमां मुस्लिम-शैव-ब्राह्मण संस्कृतिनां तत्त्वोनुं एक जैन मुनि द्वारा जैन परम्पराना तत्त्वो साथे मिलन साधवानो प्रयास थयो छे. ऊर्दू-अरेबिक-हिन्दी-गुजराती भाषाओनो यथेच्छ उपयोग अने हिन्दू-जैन-मुस्लिम ख्यालोनुं निःसंकोच संमिश्रण आ रचनामां करनार जैन मुनि-कविनो उद्देश समन्वय / समाधाननो छे अने ते छठ्ठी चालनी अवतरणिकामां-"निज-पर निज निज ज्ञान-माया-शक्त-आराध निज निजनाथभजना निज निज सिध सासण प्राप्ती" - जेवा शब्दो द्वारा स्पष्ट थयो छे. धर्म-मत-पंथना अभ्यासी वर्ग माटे आ कृति रसप्रद सामग्री पूरी पाडशे.

'श्री आदिनाथ वीनति' स्तवन प्रकारनी रचनाओना प्रारंभिक काळनी रचना छे. आत्म निवेदन/आत्मसमर्पण / प्रभुगुणगाननो विषय धरावती स्तवन प्रकारनी सहस्रो कृतिओ मुद्रित-अमुद्रित स्वरूपे जैन ज्ञानभण्डारोमां मळे छे. प्रायः प्रत्येक विद्वान जैन मुनिए स्तवनो रच्यां हशे, केमके शिक्षण-प्रशिक्षण उत्तम प्रकारनुं मळेलुं ज होय अने भक्तिभाव तो घूंटातो ज होय, तेनी अभिव्यक्ति काव्यस्वरूपे थया विना न रहे.

कृतिनां केटलांक स्थळो अस्पष्ट रह्यां छे, तो केटलांक खोटी रीते वंचायां छे. कडी १० : 'करीउ'नो 'उ' लिपिकारना हाथे वधारानो लखायो छे. 'करी' वांचवुं जोइए. आ ज कडीमां 'आलमालु' ने अशुद्ध समजी कौंसमां 'आलवालु' आप्युं छे, एटलुं ज नहि, कोशमां संस्कृतना आधारे 'क्यारो, थांभलो' अर्थ आपी दीधो छे, परंतु ते भ्रमपूर्ण छे. 'आलमालु' मध्यकालीन गुजरातीनो तळपदो शब्द छे. कडीनो समग्र अर्थ तपासतां एनो अर्थ 'व्यर्थ प्रयास, निरर्थक दोडधाम' जेवो जणाइ आवे छे. 'परिख' नो अर्थ थाय - 'विना, वगर'. "तारा विना जगत आलमालु छे,व्यर्थ त्रास छे."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क. १६ : 'नगरीसु' छे त्यां 'नगरी सु' एम होवुं जोइए. सु =ते. 'सुजाति', 'सुद्दीसु'मां पण एम ज थयुं छे. क. १८ : 'अलीढउ'नो अर्थ विलंब, ढील एवो नीकळे छे. "प्रभु, तमे आटला दिवस विलंब कर्यो."

शब्दकोशमां-

सारि=साधी आप, करी आप.

दारिद्र मुद्रा=कृपणपणुं, दरिद्रता एवो अर्थ तो बरोबर छे परंतु 'छोडि' ने भूतकाळनुं रूप समजीने अर्थ करायो छे ते भूल छे. छोडि: आज्ञार्थ, द्वि. पु. ए. व. छे. "प्रभु (मारी) दारिद्रमुद्रा छोड, दूर कर". विच्छेदि, मेलि, सारि वगेरे आज्ञार्थनां रूपो छे.

सधाडि ='धाड सहित' एवो अर्थ युक्त नथी जणातो. 'वीवी'नुं मूळ 'वीचि' होय के केम ते विचारणीय छे.

डॉ. रसीला कापडिया द्वारा 'अंतरीक पार्श्वनाथ छंद' नामक बीजी कृति पण सम्पादित थई छे. मध्यकालीन साहित्यमां तेमनी रुचि / गति जोईने आनन्द थाय छे. कृति महिमाप्रधान छे. तेथी तेमां अतिशयोक्ति, चमत्कारनुं तत्त्व तो रहेवानुं ज. मुस्लिम अने बौद्ध देशोमां पण अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ प्रभुनो प्रभाव होवानी वातने अतिशयोक्ति गणवी जोईए. जो के देशनामो रसप्रद अभ्यासनी सामग्री पूरी पाडे छे. श्री प्रेमविजयजी अर्थे रचाई छे एम सम्पादिका नोंधे छे, परन्तु तेम नथी, तेमना वाचनार्थे लखाई छे. आ श्री प्रेमविजयजी उग्रविहारी, तपस्वी अने अभिग्रह धारी हता. एमना संकल्पो / नियमोनी टीप पूर्व अनुसन्धानमां प्रगट थई चूकी छे.

कृतिना केटलाक पाठ शुद्धि-वृद्धिने पात्र छे :

क. ३२. 'नख सखालि' छे त्यां 'कास सास' जेवो शब्द संभवित छे. बीजा चरणना अन्ते 'तास' छे, तेथी प्रासनी आवश्यकता जोतां सास-कास जेवो शब्द जरूरी पण छे.

क. १३. 'सुख थाय' मां 'थाय' अशुद्ध जणाय छे.

क. १४. 'उच्च लता' नहीं पण 'उच्चलता' (ऊखडता) एम वांचवुं योग्य थशे. 'पड्य' छे त्यां 'पड्या' अने 'पंडिआ' छे त्यां 'पडिआ' साचो पाठ संभवे छे.

क. १९. 'वहेलो हित पूरए' आ खोटुं वाचन छे."वहे लोहित पूर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए' एम वांचवुं.

क. १६. 'अतिआ कूटे' ने स्थाने 'अति आकूटे' होई शके.

क. १७. काया (ल)	'ल' अनावश्यक छे.
क. ३० खसखान	'खुरासान' होवा संभव.
क. ३० सिलाण	सिलोन होई शके.
क. ३५ उच्चा लता	'उच्चालता' होइ शके.
क. ४४ सरदास	अरदास

शब्दकोशमां हजी वधु शब्दो लेवा जेवा छे :- उच्चलता (१४), अलबत्त (२२), अलंगी (२२), कबान (४०). विसराल (१५); आ विशेषण छे, क्रियापद नथी.'' विखराइ जाय, नाश पामे तेवुं.'' चामीकर (१२) : सुवर्ण.

डॉ. हसु याज्ञिकनो 'जैन कथासाहित्य' शीर्षकवाळो लेख 'कथा-वार्ता' साहित्यनो परिचय अने व्याख्या रजू करे छे. साथे अन्य परम्पराना साहित्यनी तुलनात्मक माहिती पण आमां अपाई छे.

पूनानी भण्डारकर प्राच्य विद्या संस्थाना प्राकृत-अंग्रेजी बृहत् कोशनिर्माणना प्रकल्पनी रोमांचक माहिती आपतो डॉ. नलिनी जोशीनो लेख साधु-साध्वीओ अने जैन विद्वानोए अवश्य वांचवा जेवो छे. ई.स. १९८७ थी आ कोशकार्य शरू थयुं छे अने हजी २०-२५ वर्ष आ कार्य चालशे. 'अ' थी शरू थता प्राकृत शब्दोनुं काम पूरुं थयुं छे अने आटलुं लखाण पण एक हजार पानां रोके छे. आ कार्य अत्यन्त जटिल, भारे शारीरिक - बौद्धिक श्रमथी साध्य, अत्यन्त धीरज मागी ले तेवुं गंजावर छे. धनव्यय पण मोटो. वर्षे दश लाख रूपिया अत्यारे खर्च थाय छे. आ. शीलचन्द्रसूरिजीए आ कार्यमां रस लीधो अने आर्थिक अनुदान माटे योग्य स्थळे प्रेरणा पण आपी ए तेओनी दीर्घदृष्टि, संशोधन प्रेम अने कर्तव्यनिष्ठानी द्योतक बीना छे.

जैन देरासर,
नानी खाखर-३७०४३५
जि. कच्छ, गुजरात

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org